अंक—1

Regd. No. L. 2077.

आश्विन सम्वत् १९८४

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

भक्ति

अंवधमात्यादिश्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भक्तद्रोही विमूढानां शास्त्र गर्हेषु सूक्ष्मताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यान् तेषां जन्म शतैरपि ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ।

वार्षिक चन्दा २)

एक प्रतिका ।)

निम्न लिखित महानुभाओं ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलज़ारबाग़, पटना १०१)

२. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)

३. श्रीमान् भाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)

४ राव श्रीराम रईस नांगल २५)

५. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)

६. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)

७. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)

८. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)

९. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिस्पल कमेटी पलवल। ११)

२. श्रीमती उमरावकोर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नाँगल ११)

३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)

४. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)

५. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैनपुर तहसील रेवाड़ी। ५)

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः"।

वार्षिक चन्दा २)　　एक प्रति का ।)

सम्पादकः- स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन पूर्णिमा सं० १९८४। { अङ्क १

॥ मंगलाचरणम् ॥

ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे।
एकस्तिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ १ ॥

ब्रह्मादिक और चराचर लोकों के नष्ट होने पर जो विश्वात्मा अकेला स्थित रहता है सो विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ १ ॥

यः प्रभु सर्वलोकानां येन सर्वमिदं ततम्।
चराचरगुरुर्देवः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २ ॥

जो सब लोकों का प्रभु है, जिसने यह सम्पूर्ण जगत् रच रक्खा है, जो देव चराचर जगत् का गुरु है सो विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ २ ॥

आभूतसम्प्लवे चैव प्रलीने प्रकृतौ महान् ।
योऽवतिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३ ॥

महाप्रलय के समय में महान प्रकृति के लीन होने पर जो विश्वात्मा अवशेष रहता है सो विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ३ ॥

येन क्रांतास्त्रयो लोका दानवाश्च वशीकृताः ।
शरण्यः सर्व लोकानां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ४ ॥

जिसने तीनों लोक अपने पैरों से नाप लिये और दानव वश में कर लिये जो सब भूतों को शरण देने वाला है सो विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

यस्य हस्ते गदा चक्रं गरुडो यस्य वाहनम् ।
शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ५ ॥

जिसके हाथ में गदा और चक्र है, गरुड़ जिसका वाहन, जिसके हाथ में शंख है वह विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ५ ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेवच ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ६ ॥

जो चार वेदों करके, चार उद्गाता आदि आचार्यों करके, दो स्त्री पुरुषों करके, पांच प्राणों करके और दो हाथ और सुवा करके हवन किया जाता है वह विष्णु भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ६ ॥

शमीगर्भस्य यो गर्भस्तस्य गर्भस्य यो रिपुः ।
रिपु गर्भस्य यो गर्भः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ७ ॥

शमी का गर्भ अरणि अरणि, का गर्भ अग्नि तिस का गर्भ सुवर्ण तिस का गर्भ कहिये हिरण्यगर्भ (हिरण्यकशिपु) तिस शत्रु गर्भ का गर्भ प्रह्लाद के गर्भ अर्थात् अन्तःकरण में निवास करने वाले विष्णु भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ७ ॥

सोमार्काग्निमयं तेजो या च तारामयी द्युतिः ।
दिवि संजायते तेजः स महात्मा प्रसीदतु ॥ ८ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, अग्निरूप जो तेज है, तारागण में जो कान्ति है, स्वर्ग में जो तेज है ऐसा वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

गुणात्मा निर्गुणश्चान्योराशिमवांश्चेतनोह्यजः ।
सूक्ष्मः सर्वगतो देहः स महात्मा प्रसीदतु ॥ ९ ॥

जो गुणों का आत्मा और आप निर्गुण अलग है, प्रकाश रूप चेतन अजन्मा है। सूक्ष्म है, सर्वगत देह रहित है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ९ ॥

अव्यक्तं सदधिष्ठानमचिंत्यं तमसः परम् ।
प्रकृतिः प्रकृतिं भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ १० ॥

जो अव्यक्त अप्रकट रूप है, सत् अधिष्ठान है, अचिन्त्य है, माया से अलग है, महदहंकार प्रकृति रूप होकर प्रकृति को भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ १० ॥

क्षेत्रज्ञः पञ्चधा भुंक्ते प्रकृतिं पञ्चभिर्मुखैः ।
महागुणांश्च यो भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ११ ॥

जो क्षेत्रज्ञ होके पांच प्रकार से पांच मुखों करके प्रकृति को भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, अन्तः मैं नहीं कहता कि आप आकर दर्शन दीजिये, क्योंकि यदि मेरा पूर्ण प्रेम होता तो क्या आप ठहर सकते ? क्या वैकुण्ठ में लक्ष्मी भी आपको अटका सकती ? यदि मेरी आप में पूर्ण श्रद्धा होती तो क्या आप विलम्ब करते ? क्या वह प्रेम और विश्वास आप को छोड़ सकता ? अहो ! मैं व्यर्थ ही संसार में निष्कामी और निर्वासनिक बना हुवा हूं और व्यर्थ ही अपने को आपके शरणागत मानता हूं। परन्तु कोई चिन्ता नहीं, जो कुछ

आकर प्राप्त हो उसी में मुझे प्रसन्न रहना चाहिये क्योंकि मुझे तो आप के "यदृच्छा लाभ सन्तुष्टः, और सन्तुष्टो येन केन चित्" आदि गीता के वाक्य स्मरण हैं। अतः आपके चरण कमलों की भक्ति में मग्न रहते हुए यदि मेरे को नरक भी प्राप्त हो तो वह भी स्वर्ग से बढ कर है। ऐसी दशा में मेरे को क्या चिन्ता है? जब मेरा आप में प्रेम होगा तो क्या आप को नहीं होगा? जब मैं आपके दर्शन बिना नहीं ठहर सकूंगा उस समय क्या आप ठहर सकेंगे? आप ने स्वयं कहा है:-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्तमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

जो मेरे को जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूं। अतएव मैं नहीं कहता कि आप आकर दर्शन दीजिये। और आपको भी क्या परवाह है, परन्तु कोई चिन्ता नहीं, आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें, आप जो कुछ करें उसी में मेरे को आनन्द मानना चाहिये।

भक्तों के चरित्र

स्वामी रामानन्द जी

हृदय की पवित्रता, सरलता और बुद्धि की सूक्ष्मता व विकाश के साथ २ मनुष्य-समाज में श्रद्धा विश्वास, प्रेम और विवेक की जाग्रति होती है। हृदय की पवित्रता के साथ २ श्रद्धा विश्वास और प्रेम का तो विकाश होता है परन्तु बुद्धि की निर्मलता के बिना विवेक के आनन्द का मिलना दुर्लभ है। अन्तःकरण की शक्तियों में बुद्धि का विशेष महत्व है भगवान् गीता में कहते हैं

मनसस्तु परा बुद्धि र्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।

बुद्धि के विकाश के बिना सर्वज्ञता का विकाश नहीं होता और सर्वज्ञता के विकाश के बिना आत्म-तत्व के सर्वव्यापकत्व भाव का विकाश नहीं होता और बिना इस विकाश के आत्म-तत्व विकाश के उस प्रकाश को हम अनुभव नहीं कर सकते जो प्रकृति के अणु २ और परमाणु २ में देदीप्यमान हो रहा है, बिना इस प्रकाश के हम प्रकृति और पुरुष के एकत्व को अनुभव नहीं कर सकते और इस अनुभव के बिना अहं तत्त्व को सब में व्यापक न देखकर सब को अपना आपा नहीं समझ सकते और बिना इसके अनुभव किए हम राग व द्वेष व भय से छुटकारा नहीं पासकते और इनसे छुटकारा पाए बिना हम अपने लिए और मनुष्य समाज के लिए आनन्द का वायुमण्डल नहीं बना सकते। यह बात श्रद्धा और विवेक

दोनों के विकाश के साथ उत्पन्न हो सकती है। इस के लिए भक्ति के साथ तत्व ज्ञान का होना भी आवश्यक है और वास्तव में मनुष्य इस अवस्था में जाकर ही पूर्ण भक्त बनता है जैसा कि भगवान् गीता में कहते हैं–

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

स्वामी रामानन्द जी इसी कोटि के पुरुष थे। उन्होंने श्री सम्प्रदाय में होते हुए भी प्राणी मात्र के लिए भक्ति का दरवाज़ा खोल दिया था तब ही तो उस समय में कबीर, रैदास और सेन नाई जैसे भक्त प्रकट हुए जिन के बहाए भक्ति-स्रोत का अमृत अबतक उस जगह में मिलता है जहां अपने को मनुष्य समझने वाले लोगों का गुजर ही नहीं है। इस बात की परीक्षा के लिए किसी गांव या कस्बे में चले जाइए और भिन्न २ जाति के लोगों से भक्ति के शब्द व भजन सुनने का प्रयत्न कीजिए फिर आपको अनुभव होजावेगा कि कबीर जी और रैदास जी की कृपा से भक्ति भाव के भजनों का कोष उन लोगों में ही मिलेगा जिनको आप चमार या भंगी समझते हैं। रामानन्द जी भगवद्भक्त विवेकी सिद्ध योगी व आचार्य थे। इनकी कृपा से लाखों नर नारियों ने भव सागर को पार किया है। यह शंकर सम्प्रदाय के किसी सन्यासी के शिष्य होगए थे। एक दिन बाग में गुरु के लिए फूल लेने गए थे। वहां श्री वैष्णव सम्प्रदाय के स्वामी राघवानन्द जी ठैरे हुए थे। राघवानन्द जी ने इनको देखकर कहा "तुम्हारी आयु का केवल एक दिन बाक़ी रहा है, कल इस अमूल्य रत्न शरीर को छोड़ तुमको प्रस्थान करना होगा, इस लिए इस शेष समय को भगवत् आराधना में लगाकर भगवान् की शरण होजाना चाहिए,, रामानन्द जी को इन बातों के सुनने से आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपने गुरु से आकर निवेदन किया। गुरु इस रहस्य को नहीं समझ सके। लाचार दोनों राघवानन्द जी की सेवा में उपस्थित हुए। सन्यासी ने पूछा आप किस तरह कहते हैं कि इसकी आयु में एक दिन शेष रहा है। राघवानन्द जी ने उनको समझा दिया, इस पर दोनों ने मिलकर प्रार्थना की, कि हमको आप की आज्ञा शिरोधार्य है जिस तरह हो सके इसके कल्याण का उपाय बतावें। राघवानन्द जी योगी थे उन्होंने रामानन्द की दशवें द्वार ब्रह्माण्ड में समाधि लगवादी। यह कई दिन तक अचेत पड़े रहे। मृत्यु का समय टल गया। जब समाधि खुली राघवानन्द जी की शरण गही और उनसे मंत्र लेकर सेवा में रहने लगे। बहुत समय तक सत्संग करने के पीछे तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

दक्षिण देश तो सन्यासअवस्था में ही देखा हुआ था अब उत्तरी भारत का पर्यटन किया। पहले बद्रिकाश्रम की तरफ गए फिर काशी जी में आकर पञ्चगंगा घाट पर निवास किया। यहां पर इनके नाम से एक मठ अब तक मौजूद है और इन की खड़ाऊं भी रक्खी

हुई है।

विधी निषेध के संस्कार तो सन्यास में ही कम होगए थे, फिर देश में भ्रमण किया और बुद्धि में विवेक का विकाश हुआ इसलिए इन्होंने वैष्णव-धर्म के आचार सम्बन्धी कठिन नियमों को पालन करने में ढीला कर दिया था। रामानुजाचार्य के समय से वैष्णव सम्प्रदाय में भोजन सामग्री के सम्बन्ध में छूआ छूत का बहुत विचार होगया था। अब भी इन बातों को यह लोग मुख्य धर्म्म समझते हैं। रामानन्द जी के आचार विचार की बात साथियों ने रामानन्द जी तक पहुंचाई, उन्होंने रामानन्द जी को बुलाकर पूछा। इन्होंने अपना मत स्पष्ट कह दिया और भागवतादि ग्रन्थों के प्रमाण भी दिए कि जो भगवच्चरण होगया उसको वर्णाश्रम धर्म्म का बन्धन नहीं रहा वह अच्युत गोत्री बनगया। इस पर एक कुण्डलिया भी है।

कुण्डलिया।

भक्ति पन्थ में आय कर,
तजदे भरम विकार।
तजकर भरम विकार,
ध्यान भगवत् का करना।
छूत छात बिसराय,
नाम पर उसके मरना। १।
प्रेम भाव से राम ने,
खाए झूटे बेर।
शिबरी प्यारी भक्तिनी,
लाई राम को घेर॥ २॥
साग बिदुर घर खालिया,
तज दुर्योधन खीर।
कृष्ण को प्यारे भक्त हैं,
धीर बीर गम्भीर॥ ३॥
धरम राज के यज्ञ में,
घण्टा बोला नांह।
ऋषि मुनि खाली भक्ति से,।
भक्ति सुपच के मांह॥ ४॥
छूत छात अरु वरण का,
भक्ति में कहां विचार।
भक्ति पन्थ में आयकर,
तजदे भरम विकार॥ ५॥

रामानन्द जी सुनकर अवाक होगए, मन में समझ गए कि इसकी दृष्टि विस्तृत हो गई है, यह मनुष्य मात्र को अपनी आत्मा समझता है। प्रसन्न होकर उपदेश किया "रामानन्द तुम अपना पृथक् मत चलाओ क्योंकि वैष्णवों के साथ तुम्हारा निर्वाह होना कठिन है, परन्तु एक बात का ध्यान रहे कि केवल उच्च कोटि के धार्मिक पुरुषों को उपदेश देना और उनको निवृत्ति मार्ग में लगा देना। गृहस्थी या वर्णाश्रम वालों को साधारण सत्संग कराने के अतिरिक्त कुछ न कहना।

यह गुरु जी से आज्ञा लेकर काशी जी चले आए। वहां आकर एक आश्रम बनाया और भक्ति का प्रचार करने लगे। यह राम और सीता के उपासक थे अतएव इनकी

सम्प्रदाय का नाम 'रामावत, पड़ा। यह भक्ति के साथ २ त्याग और वैराग पर बहुत जोर देते थे। यद्यपि वैष्णव संस्कारों से प्रभावित होने के कारण जाति पांति और छूआ छूत का भाव मनमें था परन्तु वह सब बाह्य दृष्टि थी। अन्तरात्मा में यह केवल सच्ची भक्ति के प्रेमी थे तब ही तो रैदास को अपना शिष्य बनाया। इनके शिष्यों की संख्या बहुत थी जिनमें प्रत्येक जाति के मनुष्य शामिल थे। इनके मुख्य २ शिष्यों के नाम यह हैं जो बहुत अनुभवी, परोपकारी, सिद्ध और भगवक्त हुए हैं। अनन्तानन्द, सुरेश्वरानन्द, सुखानन्द भवानन्द, कबीर, रैदास, धन्ना जाट, पीपा (राजपूत) सैन (नाई) सदन कसाई गणिका (वैश्या) इत्यादि। अब भी इस मत के साधु बहुत मिलते हैं। इनका तिलक भी रामानुजी साधुओं से भिन्न है। तुलसीकृत रामायण के रचयिता गोस्वामी तुलसी दास जी और भक्त माल के बनाने वाले नाभा जी इसी सम्प्रदाय के महात्मा थे। इन सब भक्तों और महात्माओं द्वारा धर्म्म का कितना प्रचार हुआ है और कितने जीवोंका उद्धार हुआ है इसका ठीक अनुमान क्या हो सकता है? कहते हैं कि गङ्गा तट पर जो कपिल देव मुनि का आश्रम लुप्त होगया था उसको स्वामी रामानन्द जी ने प्रकट कर पुनःस्थापन किया। इस सम्प्रदाय की एक गद्दी गलता जी (जैपुर) और एक सीकर राज्य में है॥

आत्मत्याग।

(ले० पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री ऋषिवेश)

संसार के सभी बड़े बड़े उपदेशकों ने स्वार्थ-त्याग को बड़ा धर्म बतलाया है। लौकिक उन्नति हो अथवा आत्मिक, स्वार्थ त्याग किये बिना मनुष्य को सुख की प्राप्ति नहीं होसकती। बिना स्वार्थत्यागी महात्माओं के उत्पन्न हुए समाज का कल्याण नहीं हो सकता। जिन मनुष्यों की सारी शक्तियां अपनी ही इच्छाओं और आवश्यकताओं पर अवलम्बित हैं अथवा जो निजवासनाओं की पूर्त्ति में ही सदा यत्न-वान् रहते हैं संसार चाहे भाड़ में चला जावे पर अपनी विलासता को क्षण भर छोड़ने की फुरसत नहीं है, ऐसे महाभिमानी व्यक्तियों से समाज सुधार की अथवा उन्नति की आशा दुराशा मात्र है। "आत्मवत् सर्वभूतेषु" के अमोघ मंत्र को हृदय में धारण किये बिना दूसरों की भलाई या परोपकार करने की इच्छा उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

देखा जाता है कि आत्म-त्याग का सच्चा मतलब समझे बिना लोग उस के बदले में अन्यक्रियाओं का आचरण करके ही संतुष्ट हो जाते हैं। यहां तक कि कई लोगों ने उस का मतलब आत्मघात तक समझ रक्खा है। कितनों का विश्वास है कि बाह्य वस्तुओं, धन, कुटुम्ब ऐश्वर्य और परिवार को छोड़ कर जंगलों में जा बैठना ही आत्म त्याग है, कितने नाना प्रकार की यातनाओं द्वारा शरीर को

कष्ट देकर सुखा डालने को आत्म-त्याग समझते हैं, कितने लौकिक यशकी इच्छा से प्रेरित होकर अपने धन और प्राणों को समाज और देश के नाम पर न्योछावर कर देने को आत्मत्याग मानते हैं। कहां तक कहें, दुनियां में जितने भी उत्तम कर्म हैं, वे सब आत्मत्याग के स्वरूप ही समझे अपितु माने जाते हैं।

आत्मत्याग का सच्चा स्वरूप उपर्युक्त सब दृष्टान्तों से भिन्न और विलक्षण है, आत्मत्याग स्वार्थत्याग का ही दूसरा नाम है, और स्वार्थ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हृदय से बाहर फेंकी जा सके, वह तो मन की एक अवस्था विशेष है जिसको दूसरे रूप में बदलने की आवश्यकता है। आत्मात्याग का मतलब आत्मा को बरबाद करने की चेष्टा करना नहीं परन्तु वासनाओं से और इच्छाओं से लिप्त निजात्मा को धोने का सतत प्रयास करना है। स्वार्थ का सच्चा अर्थ क्षण स्थायी सुखों में फंस कर सदाचरण और विवेक को भूलना है, स्वार्थ हृदय की उस वासनामय और लोभपूर्ण अवस्था का नाम है जिसका त्याग किये बिना सत्य का उदय नहीं हो सकता और न शान्ति एवं सुख का ही हृदय में संचार हो सकता है।

केवल वस्तुओं का त्याग ही सच्चा स्वार्थत्याग नहीं कहला सकता, किन्तु वस्तुओं की इच्छाओं का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है। मनुष्य अपने धन, कुटुम्ब, परिवार और घर द्वार को त्याग कर भले ही सन्यासी बन भगवें वस्त्रधारण कर लेवे, परन्तु जब तक मानसिक भावों और वासनाओं का दमन न किया जावे तबतक सारी बाह्य क्रियायें आडम्बर मात्र हैं, जिस से बजाय लाभ के और उलटी हानि ही प्रत्यक्ष है। सब लोगों को विदित है कि महात्मा बुद्ध संसार को त्याग कर जंगल में जा बैठे, परन्तु सात वर्ष तक उनके हृदय में ज्ञान का उदय न हो सका, क्योंकि वह इतने दिनों तक अपने मन को स्वायत्त करके उसपर निजप्रभुत्व न जमा सके थे। ज्योंही हृदय शुद्ध हुवा और मानसिक भावों में पवित्रता के स्रोत की अवच्छिन्न लहरें बहने लगीं त्योंही एक दम उन की ज्ञान ज्योति जगमगा उठी और सारा चराचर विश्व उन्हें प्रत्यक्ष हो गया।

यदि चित्तको वशमें किए बिना कोई मनुष्य वस्तुओं का परित्याग कर दे तो उसे शान्ति के बदले लोभ और दुःख प्राप्त होगा, यही कारण है कि देश के भीतर सैंकड़ों नवयुवक साधु अपने वेश के प्रतिकूल आचरण करने लगते हैं। केवल मान बड़ाई अथवा यशः प्राप्ति के लिए छोड़ा हुआ संसार थोड़े ही समय में ऐसा आकर्षण करता है कि वे बेचारे अपने आवेगों को सहने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि बाह्य पदार्थों की ममता नहीं छुटी है तो उन का परित्याग करना ही मूर्खता है। मानसिक शान्ति को भ्रष्ट करने में बाह्य पदार्थों का बहाना बहुत कम है, वस्तुतः अपने हृदय में इन पदार्थों के प्रति जो इच्छा उत्पन्न होती

है वही स्थिरसुख और सदाकी शान्ति को चुराने वाली है।

लोग कहते हैं कि इन्द्रियों को तृप्त करने वाले आनन्दमय पदार्थों का त्याग करना बड़ा दुस्तर और कठिन कार्य है। मीठे २ भोजन, सुन्दर शृंगार, सुन्दरी स्त्रियां और धन ऐश्वर्य को देख कर उस मनुष्य के हृदय में कितनी वेदना होती होगी जिस ने अपनी बेसमझी के कारण इनका त्याग कर दिया है? लोगों का यह अनुमान सत्य और झूठ दोनों हो सकता है। यदि त्यागे हुवे पदार्थ के प्रति तुम्हारे हृदय में थोड़ा भी मोह बना है तो उस पदार्थ को देखते ही तुम्हें सचमुच आन्तरिक कष्ट होगा। तम्बाकू को दूसरों के दबाव अथवा अनुरोध से त्याग देने के कारण किस प्रकार दुःख होता है इसका बहुत से आदमियों को अनुभव होगा। इस के विपरीत यदि किसी पदार्थ के अवगुणों को देखकर तुम्हें उस से सच्ची घृणा हो गई है और तुम ने फिर उसका त्याग किया है तो तुम्हारे हृदय में उस वस्तु का स्मरण होते ही आनन्द की जागृति होने लगेगी। अतएव ज्यों २ इच्छाओं को बुद्धि पूर्वक दमन किया जाता है त्यों २ आत्मत्याग सुख का कारण होता जाता है। इस सत्य को अथवा इस रहस्य को बिना समझे ही पश्चिम के जड़वादी दार्शनिकों ने त्याग-मार्ग की निन्दा की है।

आत्मत्याग करते समय मनुष्य को स्मरण रखना चाहिये कि किन अवगुणों को त्यागने से उसका आत्मा शुद्ध और बलवान् होगा। घृणा, ईर्षा, लोलुपता, मान, माया, असत्य और छल कपट यह सभी मानसिक दुर्भाव हेय हैं। धन कुटुम्ब और घर द्वार को त्यागने से पहिले अपने नित्य के दैनिक व्यवहार में इन भावों का त्याग करना ही सच्चा आत्मत्याग है। इन भावों के कारण मनुष्य का आत्मा बद्ध है। वह इस कारण दूसरे आत्माओं के साथ स्वछंदता पूर्वक नहीं मिलने मिलाने पाता।

सौजन्यता, प्रेम, सहानुभूति यह सब एक आत्मा का दूसरा आत्मा के साथ स्नेह पूर्वक मिलने के ही नाम हैं। इस लिए अपने संकुचित क्षेत्र को विस्तृत बनाने के लिए हमारा कर्तव्य है कि हम अपने हृदय स्थित क्षुद्रभावों को निकाल डालें। प्रारम्भ में इनका परित्याग करना कष्टदायक प्रतीत होगा, परन्तु धीरे २ फिर वही कष्ट सुख के रूप में परिवर्तित होता जायगा। इस मार्ग के सन्मुख होने पर पहिले तो मनुष्य को स्वर्गीय सुख का अनुभव कभी कभी होगा, परन्तु कुछ काल के अनन्तर फिर यही सुख उस के हृदयमन्दिर में अधिक समय तक विश्राम लेगा। यहां तक कि अन्त में वह सुख वहीं निवास करने लगेगा, और उस मनुष्य को यही मानव जीवन स्वर्ग तुल्य जंचने लगेगा।

इसी अन्तिम अवस्था का नाम कृतकृत्य दशा है। जब मनकी सभी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली जाती है तब किसी बात

का त्याग करना बाक़ी नहीं रह जाता। जब आत्मा की सभी शक्तियों का पूर्ण विकाश हो चुकता है तब मन में किसी बातकी चिन्ता नहीं रह जाती है। उस समय जीवात्मा एक शरीर में अवस्थित रहते हुए भी विश्व-व्यापी है, अपने और पराये का भाव उस में रंचमात्र नहीं रहता।

मूल रामायण।

तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥१॥

तापसः वल्मीकस्यापत्यं पुमान् वाल्मीकिः तपस्यायां वेदादिपठनपाठने च संलग्नं वाग्मिनां (मध्ये) उत्तमं मुनिषु श्रेष्ठं नारदं पृष्टवान् ॥१॥

तपस्वी वाल्मीकि ने तपस्या और स्वाध्याय में लगे हुए तथा विद्वानों और मुनियों में श्रेष्ठ नारद से पूछा ॥ १ ॥

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्चवीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्योदृढव्रतः ॥२॥

एतस्मिन् मृत्युलोके सम्प्रति कः खलु गुणाढ्यः कश्च बलिष्ठः तथा धर्मवित् कृतज्ञः यथार्थवादी दृढसंकल्पश्च कः ॥ २ ॥

इस लोक में आज कल गुणी, बली, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रत कौन है ॥ २ ॥

चारित्रेण च कोयुक्तः सर्वभूतेषु कोहितः।
विद्वान् कः कःसमर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥३॥

सदाचारेण संयुक्तः सर्वेषु प्राणिषु हितकारी विद्वान् सामर्थ्यवान् मनोहरं अद्वितीयं यस्य स तथाभूतश्च कः? ॥ ३ ॥

सदाचार से युक्त, सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान्, शक्तिशाली और प्रियदर्शन कौन है ॥ ३ ॥

आत्मवान्कोजितक्रोधोद्युतिमान् कोऽनुसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥४॥

आत्मनिष्ठः कोपरहित स्तेजस्वी परनिन्दा विवर्जितश्च कः? रणे कस्मात् कृतक्रोधात् देवा अपि त्रसन्ते? ॥ ४ ॥

आत्मनिष्ठ, क्रोध रहित, तेजस्वी और परनिन्दा से रहित कौन है? कौन ऐसा है, जिसके रण में कोप करने पर देवता भी थरथर काँपते हैं ॥ ४ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे! त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम् ॥५॥

हे ऋषिपुङ्गव! अहं इदं आकर्णयितुं वाञ्छामि; यतः मम महत् कुतूहलं (वर्तते) त्वं एतादृशं पुरुषं बोद्धुं क्षमः असि ॥ ५ ॥

हे महर्षि! मैं यह सुनना चाहता हूँ। क्यों कि मुझे बड़ा कुतूहल है। आप ऐसे पुरुष को जानने में समर्थ हैं ॥ ५ ॥

श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञोवाल्मीकेर्नारदोवचः।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥

त्रैलोक्यवित् नारदः वाल्मीकेः इदं वचनं

निशम्य पुलकितः सन् (नारदं) आमन्त्र्य च 'निशम्यताम्' इतीदं वचनमुवाच ॥ ६ ॥

त्रिलोकी के जानने वाले नारद ने यह बात सुन कर और पुलकित होकर वाल्मीकि जी को सम्बोधित करके कहने लगे–"सुनिए" ॥६॥

बहवोदुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने ! वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥७॥

हे मननशील वाल्मीके ! त्वया ये अनेके दुष्प्राप्या गुणाः कथितास्तैः संयुक्तः पुरुषो निशम्यताम् । अहं ज्ञात्वा कथयिष्यामि ॥७॥

हे मुनि ! तुम ने जो बहुत से दुर्लभ गुण कहे, उनसे युक्त पुरुष सुनो । मैं जान कर कहूंगा ॥ ७ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामोनाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥८

इक्ष्वाकोः कुलादुत्पन्निर्यस्य स तथोक्तो वशीकृतचित्तःप्रचण्डशक्तिस्तेजस्वी धैर्य्यशाली जितसकैलेन्द्रियो रामो नाम राम नामकः (पुरुषः) लोकराकर्णितः ॥ ८ ॥

इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न राम को लोगों ने सुन रक्खा है, जो अपने मन को वश कर चुके हैं, बड़े शक्तिशाली, तेजस्वी, धैर्य्यवान् और जितेन्द्रिय हैं ॥ ८ ॥

बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥९॥

मेधावी, नीतिनिपुणो वाक्पटुर्लक्ष्मीमान् त्रिद्विषां नाशको विस्तृतस्कन्धःप्रलम्बभुजदण्डः शङ्खसमकण्ठो विस्तृतचिबुकश्च ॥ ९ ॥

वे बड़े बुद्धिमान्, नीतिनिपुण, वाक्-पटु, लक्ष्मीमान्, शत्रुनाशक, महास्कन्ध, प्रलम्ब बाहु शंखसम-ग्रीवा और विशाल-चिबुक हैं ॥ ९ ॥

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुरिन्दमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥

विशाल-वक्षःस्थलो महाधनु र्गुप्तस्कन्ध वक्षः सन्धिः शत्रुदमनो जानुपर्यन्तभुजः सुन्दर शिरस्को मनोहरमस्तकः शोभनवीर्य्यः ॥१०॥

उनका वक्षःस्थल बड़ा विशाल और धनुष महान् है, कन्धे और छाती के मिलने की जगह मांस से ढकी हुई है । शत्रुओं का दमन करने वाले और आजानबाहु हैं । उन का शिर और मस्तक बड़ा सुन्दर है । उन की शक्ति बड़ी सुन्दर है ॥ १० ॥

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीमान् शुभलक्षणः ॥११

समबुद्धिः साम्येन विभक्तावयवः श्याम वर्णः प्रतापः स्मरणमात्रेण शत्रुहृदयविदारण-क्षमस्तेजो विशेषस्तद्वान् महोरस्को विशालनेत्रः सौन्दर्य्यवान् शोभनानि अङ्गगतचिह्नानि यस्य स तथोक्तः ॥ ११ ॥

वे समदर्शी हैं । उन के सब अंग बराबर विभक्त हैं। वे श्याम वर्ण और प्रतापी हैं। उन का वक्षःस्थल विशाल और नेत्र बड़े हैं और वे सब शुभ लक्षणों से युक्त हैं ॥ ११ ॥

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२

धर्म्मवित् यथार्थप्रतिज्ञः प्रजानां च कल्याणे दत्तचित्तः कीर्तिमान् सर्वविधः पवित्रः पित्राद्यधीनचित्तनिरोधशीलश्च ॥ १२ ॥

वे धर्म्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजा के कल्याण में दत्तचित्त, कीर्तिमान्, ज्ञानी, पवित्र, पिता आदि पूज्यों के वश में रहने वाले और भली भाँति ध्यान करने वाले हैं ॥ १२ ॥

प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षितः जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥१३॥

ब्रह्मणा सदृशो लक्ष्मीमान् पोषकः शत्रुविध्वंसको प्राणिजातस्य रक्षको धर्मस्य (च) रक्षकः ॥ १३ ॥

वे ब्रह्मा के समान् लक्ष्मीवान् (प्रजा के) धारण-पोषण करने वाले शत्रुओं के नाशक तथा जीव-समूह और धर्म्म के रक्षक हैं ॥१३॥

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥ १४ ॥

आत्मनो धर्म्मस्य स्वसम्बन्धिजनस्य च रक्षकः ऋगादि वेदानां छन्दः प्रभृतिवेदाङ्गानां च निष्कर्षं जानाति स तथोक्तो धनुर्वेदे च निष्णातः ॥ १४ ॥

वे अपनी, अपने धर्म्म की और अपने जनों की रक्षा करने वाले, सब वेदों और वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाले और धनुर्वेद में निष्ठा रखने वाले हैं ॥ १४ ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥

सर्वेषामागमानां सारं वेत्तीति स तथा स्मरणवान् प्रतिभासम्पन्नः सर्वेषुजनेषु प्रीतः सत्कृतिरकृपणचेता विद्वांश्च ॥ १५ ॥

वे सब शास्त्रों के निचोड़ को जानते हैं। उनकी स्मृति और प्रतिभा बड़ी तेज है। वे सब लोकों के प्रिय, सज्जन, उन्नतचित और विद्वान् हैं ॥ १५ ॥

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ १६ ॥

सदा साधुभिः सरिद्भिः सागर इव सेवितः श्रेष्ठः सर्वत्र समानः सर्वदा च मनोरमं दर्शनं यस्य स तथोक्तः ॥ १६ ॥

जैसे समुद्र नदिओं से सदा सेवित रहता है, उसी प्रकार वे सदा सज्जनों से सेवित रहते हैं। वे आर्य्य, सदा (सुख दुःख आदि में) समान और प्रियदर्शन हैं ॥ १६ ॥

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्द्धनः ।
समुद्रइव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

स च सकलैर्गुणैर्युक्तो कौशल्याया हर्षस्य वर्द्धनः (पुत्रः) अस्तीत्यर्थः। (यः) गम्भीरतायां रत्नाकर इव धीरतायां च हिमालय इव (अस्ति) ॥ १७ ॥

और वे सब गुणों से युक्त कौशल्या के पुत्र हैं, जो कि समुद्र के समान गंभीर और हिमालय के समान धीर हैं ॥ १७ ॥

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥

(सः) विक्रमे नारायणेन समः चन्द्रेण समः प्रियदर्शनः क्रोधे प्रलयवह्नितुल्यस्तिति-

क्षया च क्षितिसदृशः ॥ १८ ॥

वे पराक्रम में विष्णु के समान, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, क्रोध में प्रलय की अग्नि के समान और क्षमा में पृथ्वी के समान हैं ॥१८॥

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
तमेवं गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥

दाने कुबेरेण सदृशः सत्ये द्वितीय धर्म्मराज इव (अस्ति)। तमित्थंगुणयुक्तममोघवीर्य्यं रामचन्द्रम् ॥ १९ ॥

वे दान में कुबेर के समान हैं और सत्य में तो मानों दूसरे धर्म्मराज ही हैं, ऐसे गुणों से युक्त सत्यपराक्रम उन रामचन्द्र को– ॥१९॥

ज्येष्ठं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथात्मजम् ।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥ २० ॥

अग्रजं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रीतं दशरथस्य पुत्रं प्रजानां प्रीतेः कामनया प्रजानां कल्याणैः संयुक्तम् ॥ २० ॥

बड़े भाई, अच्छे गुणों से युक्त, सब के प्रिय, दशरथपुत्र, प्रजा की प्रीति की इच्छा से प्रजा के कल्याणों से युक्त को– ॥ २० ॥

यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः ।
तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकेयी ॥२१

राजा (दशरथः) प्रेम्णा युवराजभावेन संगमयितुमियेष । अनन्तरं तस्य (रामस्य) राज्याधिकारसंस्कारस्य सामग्री निरीक्ष्य (दशरथस्य) पत्नी कैकेयी ॥ २१ ॥

राजा (दशरथ) ने प्रेम से युवराज बनाने की इच्छा की । इस के बाद उन (राम) के अभिषेक का सामान देखकर (दशरथ की) रानी कैकेयी ने ॥ २१ ॥

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत ।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥२२॥

प्राक् (देवासुरसंग्रामे) प्रदत्तौ वरौ यस्याः सा राज्ञी (कैकेयी) एनं दशरथं स्वाभिलषितं रामचन्द्रस्य निर्वासनं स्वपुत्रभरतस्य च यौवराज्याभिषेकं नाम स्वाभिलषितं ययाचे ॥२२॥

पहले (देवासुर संग्राम में) दशरथ ने कैकेयी को दो वर देने कहे थे । देवी ने इन दशरथ से रामचन्द्र का वनवास और भरत को राज गद्दी यह अभिलषित मांगा ॥ २२ ॥

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः ।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥

स नृपतिर्दशरथस्तस्यवचनाद् धर्म्मबन्धनेन बद्धः सन् प्रियं सुतं रामचन्द्रं निर्वासयामास ॥ २३ ॥

चूंकि राजा दशरथ सत्यवादी थे अतः धर्म्म के पाश में बंध कर उन्हों ने अपने प्यारे पुत्र राम को वनवास दे दिया ॥ २३ ॥

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥

पराक्रमी स रामचन्द्रो जनकस्य (दशरथस्य) अनुज्ञानात् कैकेय्याश्च प्रसन्नताहेतोः पितुराज्ञां प्रतिपालयन् सन् अरण्यं ययौ ॥२४॥

वे वीर रामचन्द्र पिता के वचन से और कैकेयी की प्रसन्नता के लिए पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन को चले गये ॥२४॥

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥ २५॥

नम्रतायुक्तः सुमित्राया हर्षस्य वर्द्धनः (पुत्रः) (रामस्य) प्रेयान् बन्धुर्लक्ष्मणः (वनं) गच्छन्तं तं रामं प्रीत्या अनुगतवान् ॥ २५ ॥

विनीत, सुमित्रा के पुत्र, राम के प्यारे भाई लक्ष्मण वन जाते हुए राम के पीछे स्नेह से चले ॥ २५ ॥

भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमाहिता ॥२६

बन्धोः (रामस्य) प्रियः (लक्ष्मणः) बन्धुं (रामं) भ्रातृस्नेहं प्रकटयन् (वनमनुजगाम)। रामस्य प्रिया पत्नी सदा प्राणसदृशी हितकारिणी ॥ २६ ॥

भाई (राम) के प्यारे (लक्ष्मण) अपने भाई को भ्रातृभाव दिखाते हुए वन को पीछे-पीछे चल पड़े। राम की प्रिय पत्नी, सदा प्राणों के समान हितकारिणी ॥ २६ ॥

जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥

जनकस्य राज्ञो वंशे समुत्पन्ना देवमाया इव रचिता सकलैःशुभगुणै र्युक्ता स्त्रीणां मध्ये श्रेष्ठा स्त्री ॥ २७ ॥

(राजा) जनक के वंश में उत्पन्न हुई, देवमाया के समान रची गयी, सब शुभ लक्षणों से युक्त, और स्त्रियों में श्रेष्ठ वधू- ॥ २७ ॥

सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।
पौरैरनुगतौ दूरं पित्रा दशरथेन च ॥ २८ ॥

जानक्यापि रामं चन्द्रमसं रोहिणीवाऽनुजगाम । नगरवासिभिः पित्रा दशरथेन च सुदूरमन्वगम्यत ॥ २८ ॥

जानकी जी भी राम के पीछे चलीं, जैसे चन्द्रमा के पीछे रोहिणी। नगरवासी जन और पिता दशरथ दूर तक पीछे-पीछे गये ॥ २८ ॥

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् ।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥

धर्म्मपना रामो भागीरथ्यास्तटे शृङ्गवेरपुरनाम्नि नगरे निषादानां स्वामिनं वल्लभं गुहं (नाम राजानं) प्राप्य सारथिं न्यवर्तितवान् ॥ २९ ॥

धर्मात्मा रामने गंगा के किनारे शृंगवेरपुर नगर में गुह नामक प्रिय निषादराज को पाकर सारथि (रथवान) को लौटा दिया ॥ २९ ॥

गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वाबहूदकाः ॥३१॥

निषादराजेन लक्ष्मणेन सीतया च समेतो रामः, ते सर्वेऽप्येतेऽरण्येनाऽरण्यं गत्वा विपुलजलाः सरितश्च उत्तीर्य्य ॥ ३० ॥

निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीता सहित राम, ये (सब) वन से वन में जाकर और अनन्त जल से भरी नदियों को पार करके।

चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् ।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥

पश्चादरण्ये सञ्चरन्तस्त्रयः (अपि) चित्रकूटं (पर्वतं) आसाद्य भरद्वाजस्यानुज्ञानात् सुन्दरं पर्णकुटीरं विरचय्य ॥ ३१ ॥

फिर वन में घूमते हुए तीनों चित्रकूट पर्वत पर आकर भरद्वाज की आज्ञा से झोंपड़ी बना कर– ॥ ३१ ॥

देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन् सुखम् ।
चित्रकूटगते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ॥ ३२ ॥

देवैर्गन्धर्वैश्च सदृशास्ते तस्मिन् पर्वते सुखं यथा स्यात् तथा निवासं कृतवन्तः । तस्मिन् काले रामे चित्रकूटं प्राप्ते सति सुतस्य शोकेन दुःखितः ॥ ३२ ॥

देवताओं और गन्धर्वों के समान वे उस पर्वत पर सुख से निवास करने लगे । उस समय राम के चित्रकूट पर आजाने पर पुत्र के शोक से दुःखी– ॥ ३२ ॥

राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।
गते तु तस्मिन् भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥

नृपो दशरथः पुत्रसम्बन्धिविलापं कुर्वन् देवलोकमगमत् । तस्मिन् स्वर्गते सति वशिष्ठ-प्रभृतिभिः ब्राह्मणैः भरतः– ॥ ३३ ॥

राजा दशरथ, पुत्र के लिए विलाप करते हुए स्वर्ग सिधार गये । उनके स्वर्गवासी होने पर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों के द्वारा– ॥ ३३ ॥

नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यम्महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥ ३४ ॥

राज्यं कर्तुं नियुक्तो (भरतः) न काम-याञ्चक्रे । सोऽतुलशक्तिः शूरो रामचरणस्य प्रसादयिता सन् आरण्यं गतवान् ॥ ३४ ॥

राज्य करने के लिए नियोजित होने पर भरत ने उसकी इच्छा न की । वे महाबली वीर पूज्य राम को प्रसन्न करने के लिए वन को चल पड़े ॥ ३४ ॥

गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥ ३५ ॥

श्रेष्ठानाशयेन विभूषितः स भरतो (वनं) गत्वा महामनसमोघविक्रमं रामं ययाचे ॥३५॥

आर्य्य भावों से विभूषित भरत ने(वन में) जाकर उदार चेता और अव्यर्थ पराक्रम राम से याचना की ॥ ३५ ॥

त्वमेव राजा धर्मज्ञः इति रामं वचोऽब्रवीत् ।
रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥

(सः) "धर्म्मवित् त्वमेवनृपः" इति वचनंरामं प्रति निवेदितवान् । रामश्च महोदारो मञ्जुलमुखः शोभनो विपुलकीर्तिः (आसी-दिति शेषः) ॥ ३६ ॥

"आप धर्म्म के ज्ञाता हैं, आप ही राजा हैं" यह बात उन्होंने रामजी से कही । राम तो बड़े उदार सुन्दर-मुख और बड़े यशस्वी थे ॥ ३६ ॥

नचैच्छत् पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः ।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्वा पुनः पुनः ॥३७

विपुलशक्तिः श्रीरामः पितु र्दशरथस्यानु-ज्ञानाद्व राजकर्म न कामयाञ्चक्रे अस्य भरत-स्य च राज्यं कर्तुं स्वचरणपादुके प्रतिनिधिं दत्वा मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥

महाबली रामने पिता के वचन से राज्य की इच्छा न की और भरत को राज्य करने के लिए अपनी पादुकाएं प्रतिनिधि रूप से

देकर बारबार- ॥ ३७ ॥

निवर्तयामास ततो भरतम्भरतग्रजः ।
स कामसनवाप्यैव रामपादानुपस्पृशन् ॥ ३८ ॥

पुनः भरतस्य ज्येष्ठो भ्राता (रामः) तस्माद्वनात् भरतं निवर्तितवान् । स (भरतः) स्वाभिलाषमप्राप्यैव रामस्य चरणौ प्रणमन् (निवृत्तः) ॥ ३८ ॥

फिर भरत के बड़े भाई (राम) ने उस वन से भरत को लौटाया। भरत अपनी इच्छित वस्तु न पाकर ही राम के चरणों को प्रणाम करते हुए (लौट पड़े) ॥ ३८ ॥

नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया ।
गते तु भरते श्रीमान् सत्यसन्धोजितेन्द्रियः ॥३९

(सः) रामस्यागमनं तस्य वाञ्छया नन्दिग्रामे राज्यकर्म कृतवान् । भरते च निवृत्ते सति तथ्यप्रतिज्ञो जितानि वशीकृतानीन्द्रियाणि येन सः (रामः) ॥ ३९ ॥

भरत राम के आने की चाह से नन्दिग्राम में राज्य करने लगे। इधर भरत के लौटने पर सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय ॥ ३९ ॥

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च ।
तत्रागमनमेकाग्र्यादगडकान् प्रविवेश ह ॥४०

संयमी रामश्च तस्मिन् वने नगरवासिनो जनस्य भूयोऽप्यागमनं संभाव्य दण्डकारण्यान् प्रविष्टवान् ॥ ४० ॥

संयमी राम ने उस वन में नगर वासी जनों का फिर भी आना सोच कर दण्डकारण्य में प्रवेश किया ॥ ४० ॥

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः ।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गमदर्शं ह ॥४१

नीरजे इव नेत्रे यस्य स रामस्तु विशालं वनं प्रविश्य विराधं नाम निशाचरं विघात्य शरभङ्गं (ऋषिं) अपश्यत् ॥ ४१ ॥

कमललोचन राम ने तो महावन में प्रवेश कर के विराध राक्षस को मार कर शरभंग (ऋषि) के दर्शन किये ॥ ४१ ॥

सुतीक्ष्णञ्चाप्यगस्त्यञ्च अगस्त्यभ्रातरन्तथा ।
अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥४२

सुतीक्ष्णमगस्त्यमगस्त्यबन्धुं च तेनैव प्रकारेण (ददर्श) अगस्त्यस्याऽनुज्ञानादिन्द्रस्येदमैन्द्रमिन्द्रसम्बन्धि धनुश्चाग्रहीत् ॥ ४२ ॥

सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और अगस्त्य के भाई के भी दर्शन किये तथा अगस्त्य की आज्ञा से ऐन्द्र धनुष ग्रहण किया ॥ ४२ ॥

खड्गञ्च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ ।
वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥४३

सातिशयं प्रसन्नो रामः क्षयरहिताः शरा ययोस्तौ तथोक्तावितूणी कृपाणं च (जग्राह) अरण्येऽरण्यवासिभिः सार्कं निवसतस्तस्य रामस्य- ॥ ४३ ॥

अत्यन्त प्रसन्न रामने उन दोनों तरकसों को भी लिया, जिन में अक्षय बाण रहते थे और तलवार भी ली। वन में वनवासियों के साथ बसते हुए राम के पास ॥ ४३ ॥

ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे वधायासुररक्षसाम् ।
स तेषां प्रति शुश्राव राक्षसानां तदा वने ॥ ४४

दानव-निशाचराणां नाशं कारयितुं सर्वे ऋषयः समाजग्मुः। तस्मिन् समये स रामो वने तेषामृषीणां प्रति राक्षसानांवधं प्रतिज्ञातवान् ॥ ४४ ॥

दानव और राक्षसों का वध कराने के लिये सब ऋषि आये। उस समय राम ने उन से राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा की ॥ ४४ ॥

प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः सम्प्रति रक्षसाम् ।
ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥४५

रामेण दण्डकारण्ये वसन्ति तच्छीलास्तेषामग्निसदृशानामृषीणां समक्षं संग्रामे निशाचराणां हननं प्रतिज्ञातम् ॥ ४५ ॥

राम ने दण्डकारण्य में बसने वाले अग्नि के समान तेजस्वी ऋषियों के सामने रणभूमि में राक्षसों के मारने की प्रतिज्ञा की ॥ ४५ ॥

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥४६

तस्मिन्नेव दण्डकारण्ये निवासं कुर्वता तेन रामेण दण्डकारण्यस्थितरावणशिविर निवासिनी यथेष्टरूपग्राहिणी निशाचरी शूर्पणखा (शूर्पा इव नखानि यस्याः सा एतन्नाम्नि) विकृतं रूपं विरूपं विकृतिं प्रापिता ॥ ४६ ॥

वहीं रहते हुए उन्होंने जनस्थान (रावण की छावनी) में रहने वाली और अभिलषित रूप धारण करने वाली राक्षसी शूर्पणखा को (नाक कान कटवाकर) विरूप कर दिया ॥ ४६ ॥

ततः शूर्पणखा वाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४७

तदनन्तरं शूर्पणखाया वचनाद्र योद्धुं तत्परान् सर्वान् निशाचरान् (तथा) निशाचरं खरं त्रिशिरसं दूषणंच ॥ ४७ ॥

इसके बाद शूर्पणखा के कहने से, युद्ध के लिए तत्पर सब राक्षसों को और खर, त्रिशिरा तथा दूषण राक्षस को ॥ ४७ ॥

निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् ।
वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम् ॥४८

तेषां राक्षसानामनुचरांश्च संग्रामे हतवान्। तस्मिन् दण्डकारण्ये निवासं कुर्वता तेन रामेण रावणशिविरवासिनां ॥ ४८ ॥

और उनके अनुयायियों को संग्राम में राम ने मार डाला। उस बन में निवास करते हुए राम ने जनस्थान (रावण की छावनी) में रहने वाले- ॥ ४८ ॥

रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश ।
ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९

राक्षसानां चतुर्दश सहस्राणि (सैन्यानि) विनाशितान्यभवन्। तदनन्तरं रावणो जाते नाशं निशम्य कोपेन व्याप्तः ॥ ४९ ॥

राक्षसों की चौदह हजार सेना मार डाली। इस के बाद रावण जाति का नाश सुनकर क्रोध से व्याप्त हो गया ॥ ४९॥

सहायं वरयामास मारीचन्नाम राक्षसम् ।
वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ॥५०

स रावणो मारीचेन (ताडकापुत्रेण)

पुनः पुन निषिध्यमानोऽपि (तमेव) मारीचनामकं निशाचरं सहायकं वृतवान् ॥ ५० ॥

उस रावण ने मारीचनामक राक्षस को अपना सहायक वरण किया; यद्यपि वह बार बार मना करता रहा कि- ॥ ५० ॥

न विरोधो बलवता क्षमोरावण ! तेन ते ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ ५१

हे दशकण्ठ! शक्तिशालिना तेन रामेण सह तव विरोधो न युक्तः । किन्तु मृत्युना प्रेरितो रावण स्तदीयवचनं तिरस्कृत्य- ॥५१॥

हे रावण ! शक्तिशाली उस राम के साथ तेरा विरोध अच्छा नहीं ।" किन्तु मृत्यु से प्रेरित रावण उसके वचन का तिरस्कार करके- ॥ ५१ ॥

जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदन्तदा ।
तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥ ५२

तस्मिन् काले मारीचेन सहित स्तस्य रामस्य निवासस्थानं गतवान् । विविधरूप-धारणकुशलेन तेन रावणेन दशरथस्य पुत्रौ (रामलक्ष्मणौ) सुदूरमपसार्य्य- ॥ ५२ ॥

उस समय मारीच के सहित राम के आश्रम में गया । मायावी मारीच ने (हरिण बन कर) राम और लक्ष्मण को दूर लेजा कर- ॥ ५२ ॥

जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् ।
गृध्रञ्च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३

जटायुनामकं गृध्रं हत्वा रामस्य पत्नीं (सीतां) हृतवान् । जटायुषं मृतां निरीक्ष्य जानकीं चाऽपहारितां निशम्य- ॥ ५३ ॥

जटायु गीध को मार कर राम की पत्नी सीता को हर ले गया । जटायु को मरा देख कर और जानकी को अपहृत सुन कर ॥५३॥

राघवः शोकसन्तप्तो विललापाकुलेन्द्रियः ।
ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥ ५४

राम स्तेनैव सीता हरणजेन विषादेन शोकार्तस्तथा व्याकुलितानीन्द्रियाणि यस्य स तथाभूतः सन् जटायुषमग्निना ससंस्कारं कृत्वा सशब्दं रुरोद ॥ ५४ ॥

राम उस सीता के हरण शोक से दुःखी थे । उनकी सब इन्द्रियां व्याकुल थीं । वे जटायु का अग्नि संस्कार करके विलाप करने लगे ॥५४॥

मार्गमाणोवने सीतां राक्षसम्संददर्श ह ।
कबन्धनामरूपेण विकृतङ्घोरदर्शनम् ॥५५

स रामोऽरण्ये जानकीं नाम्ना रूपेण चान्वेषयन् विरुद्धाङ्गं भीषणाकृतिं च कबन्धना-मकं निशिचरं दृष्टवान् । हेति प्रसिद्धौ ॥५५॥

रामने वनमें सीताको ढूंढते हुए 'कबन्ध' राक्षस को देखा । वह बड़ा विकृतथा । उस का रूप बड़ा भयंकर था ॥ ५५ ॥

तन्निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः ।
स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६

विशालौ भुजौ यस्य स रामस्तं हत्वा वह्निना संस्कारसम्पन्नः कृतः । स्वर्गगमनोद्यतश्च स कबन्धोऽस्य रामस्य धर्मव्रतां शबरीं कथि-तवान् ॥ ५६ ॥

महाबाहु रामने उसे मार डाला। स्वर्ग जाते हुए उस ने रामसे धर्म्मात्मा शबरी का जिक्र किया ॥ ५६ ॥

श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव !
सोऽभ्यागच्छन्महातेजा: शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७

"हे रघुवीर ! धर्म्मे विशारदां संन्यासिनीं शबरीं संगतो भव।" अरिन्दमो महाप्रतापः स रामः शबरीं प्राप्तः ॥ ५७ ॥

"हे राम ! धर्म्मात्मा तथा संन्यासिनी शबरी से मिलो।" (यह कबन्ध ने कहा)। शत्रुओं का नाश करने वाले महा तेजस्वी राम (तब) शबरी से मिले ॥ ५७ ॥

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।
पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ॥ ५८

दशरथस्य पुत्रो रामः शबर्य्यया विधिवत् समर्चितः सन् पम्पानाम्नः सरसस्तटे कपिना हनुमता सह मिलितः ॥ ५८ ॥

दशरथ-पुत्र राम शबरी से भली भांति पूजित होकर पम्पासर के किनारे कपि हनुमान् से मिले ॥ ५८ ॥

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामोमहाबलः ॥ ५९

हनुमतो वाक्यादेव स रामः सुग्रीवेण (नाम कपिराजेन) सह मिलितवान्। महाशक्तिः श्रीराम स्तत्सर्वं स्ववृत्तं सुग्रीवायाकथयत् ॥ ५९ ॥

हनुमान के ही कहने से रामचन्द्र (कपिराज) सुग्रीव से मिले। महाबली राम ने अपना सब हाल सुग्रीव से कह दिया ॥ ५९ ॥

आदितस्तद्यथावृत्तम्सीतायाश्च विशेषतः।
सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०

प्रारम्भतस्तद् येन प्रकारेण सञ्जातं (तदकथयत्) जानक्याश्च विशेषतः (अकथयत्) कपिः सुग्रीवश्च रामस्य सर्वमिदं वृत्तं निशम्य- ॥ ६० ॥

पहले से जैसा जैसा हुआ (सो कहा) और सीता की बात विशेष रूप से कही। कपि सुग्रीव ने भी राम का यह सब हाल सुन कर- ॥ ६० ॥

चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।
ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥ ६१

प्रेमग्नो रामेण सह वह्निः साक्षी यस्मिन् तत् मित्रतां कृतवान्। तदनन्तरं विरोधस्य प्रश्नं प्रति कपिराजेन- ॥ ६१ ॥

प्रसन्न होकर अग्नि की साक्षी-पूर्वक राम से मित्रता की। इस के बाद विरोध की बात चलने पर कपिराज सुग्रीव ने- ॥ ६१ ॥

रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च।
प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥ ६२

स्नेहात् क्लेशितेन रामाय निखिलं (स्ववृत्तं) निवेदितम्। तस्मिन् समये रामेण वालिनो वधमुद्दिश्य प्रतिज्ञा कृता। (वालिवधार्थं प्रतिज्ञातम्।) ॥ ६२ ॥

स्नेह से दुःखी होकर राम से (अपना) सब (वृत्तान्त) निवेदित कर दिया। उस समय रामने वालि को मारने की प्रतिज्ञा

की ॥ ६२ ॥

वालिनश्च वधं तत्र कथयामास वानरः ।
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीत्तस्य वीर्येण राघवे ॥६३

तदा कपिः सुग्रीवः वालिनः शक्तिमत्त्वम् (यतः सः) सदा रामे विक्रमेण संदिग्ध आसीत् ॥ ६३ ॥

तब कपि सुग्रीव ने वालि की शक्ति बतलायी (क्योंकि वह)) राम की शक्ति में सदा संदिग्ध रहता था ॥ ६३ ॥

रामप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् ।
दर्शयामास सुग्रीवोमहापर्वतसन्निभम् ॥६४

सुग्रीवो रामस्य विश्वासार्थं दुन्दुभेः (नाम वालिनिहतराक्षसस्य) विशालं गिरिसदृशं शरीरं दर्शितवान् ॥ ६४ ॥

सुग्रीव ने राम के विश्वास के लिए दुन्दुभि राक्षस का (जिसे वालि ने मारा था) पर्वत के समान विशाल शरीर दिखाया ॥ ६४ ॥

उत्सृज्यित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ॥
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम् ॥६५

दीर्घभुजो महाशक्तिश्च रामोऽस्थिपञ्जरं दृष्ट्वा किञ्चिद् विहस्य च चरणस्याऽङ्गुष्ठेन (दुन्दुभिकायं) पूर्णं चत्वारिंशत्क्रोशमभिव्याप्य प्रक्षिप्तवान् ॥ ६५ ॥

महाबाहु और अतुलशक्ति राम ने उस अस्थिपञ्जर को देख कर तथा तनिक मुसकरा कर पांव के अंगूठे से उसे ऐसा उठा कर फेंका कि वह पूरे चालीस कोस पर जाकर गिरा ॥ ६५ ॥

विभेद च पुनस्तालान्सप्तैकेन महेषुणा ।
गिरिं रसातलञ्चैव जनयन्प्रत्ययन्तदा ॥ ६६

तस्मिन् समये विश्वासमुत्पादयन् स एकेनैव महाशरेण सप्त तालवृक्षान् पर्वतं, पातालञ्च विद्धवान् ॥ ६६ ॥

उस समय विश्वास उत्पन्न कराते हुए रामने एक ही महाबाण से सात ताल वृक्ष को तथा पर्वत और पाताल को बेध डाला ॥ ६६ ॥

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः ।
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥६७

तदनन्तरं तेन कार्य्येण प्रसन्नचेताः स महाकपिः सुग्रीवो रामेण सहितस्तस्मिन् समये किष्किन्धां नाम कन्दरामगच्छत् ॥ ६७ ॥

इसके बाद उस काम से खुश होकर वह महाकपि (सुग्रीव) राम के सहित, उसी समय किष्किन्धा नामक गुफा के पास गया ॥६७॥

ततो गर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥ ६८

तदनन्तरं सुवर्णइव पिङ्गलवर्णः कपिश्रेष्ठः सुग्रीवो गर्जनामकरोत् । तेन महता गर्जनशब्देन कपीनामीशः (वाली) वहि निःसृतवान् ॥ ६८ ॥

इस के पश्चात् स्वर्ण के समान पिंगल वर्णवाले कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने गर्जना की । उस महागर्जन ध्वनि से कपिराज (वाली) बाहर निकला ॥ ६८ ॥

अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ।
निजघान च बालिनं शरेणैकेन राघवः ॥६९

तस्मिन् समये तारायाः अनुमतिं प्राप्य सुग्रीवेण सह समागतो रामः एकेनैव बाणेनैनं बालिनं तत्रैवाऽवधीत् ॥ ६९ ॥

उस समय तारा की अनुमति से सुग्रीव के साथ आये हुए राम ने एक ही बाण से उस (बाली को) वहीं मार डाला ॥ ६९ ॥

ततः सुग्रीव वचनाद्धत्वा बालिनमाहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥ ७०

सुग्रीवस्याऽनुरोधाद् बालिनं रणे हत्वा पश्चात् तस्य राज्ये सुग्रीव मेव नियोजितवान् ॥७० ॥

सुग्रीव के कहने से बाली को संग्राम में मार कर बाद में उसके राज्य-सिंहासन पर सुग्रीव को ही बैठाया ॥ ७० ॥

स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१

सीता द्रष्टुमिच्छुः कपिपुंश्रेष्ठः स सुग्रीवश्चशेषान् कपीन् समाहूय ककुभः प्रेषयामास ॥७१॥

जानकी जी के दर्शन की इच्छा करने वाले कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने सब वानरों को बुला कर उन्हें सब दिशाओं में भेज दिया ॥ ७१ ॥

ततो गृध्रस्य वचनात् सम्पातेर्हनुमान् बली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२

पश्चात् गृध्रस्य सम्पातेः कथनाद् बलवान् हनुमान् योजनशतविस्तृतं लवणसागरं समुल्लङ्घितवान् ॥ ७२ ॥

अनन्तर गृध्र सम्पाति के कहने से बलवान् हनुमान् चार सौ कोस में विस्तृत खार समुद्र लांघ गये ॥ ७२ ॥

तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् ।
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३

तत्र सागरपारे रावणेन समधिष्ठितां लङ्कां नगरीं प्राप्य 'अशोक'-वने स्थितां ध्यानपरायणां जानकीमपश्यत् ॥ ७३ ॥

समुद्र-पार रावण से पालित लंका पुरी पहुंच कर अशोक वन में स्थित तथा ध्यान करती हुई सीता को देखा ॥ ७३ ॥

निवेदयित्वाभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ।
समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४

अभिज्ञायतेऽनेनाभिज्ञानमंगुलीयकरूपं विनिवेद्य (स्वकीयागमनरूपां) प्रवृत्तिं च निवेदयित्वा, सीतां समाश्वास्य बहिर्द्वारं विध्वस्तवान् ॥ ७४ ॥

अभिज्ञान (अंगूठी) देकर और अपने आने की कथा बतला कर तथा सीता को समझा-बुझा कर मेहराब नष्ट कर डाली ॥ ७४ ॥

पञ्च सेनागगान हत्वा सप्तमन्त्रिसुतानपि ।
शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५

पञ्च सेनापतीन्, सप्त च सचिवपुत्रान् हत्वा, वीरं (रावणपुत्रं) अक्षं च चूर्णयित्वा बन्धनं (ब्रह्मपाशेन) प्राप्तवान् ॥ ७५ ॥

पांच सेनापतियों तथा सात मंत्रि-पुत्रों को मार कर और वीर अक्ष (रावणपुत्र) को पीस कर, तब बन्धन को प्राप्त हो गया ॥७५॥

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् ।
मर्षयन् राक्षसान्वीरो बन्धिनस्तान् यदृच्छया ॥७६

ब्रह्मणो वरदानात् स्वात्मानमायुधेन क्षति-रहितं बुध्वा (अपि) वीरो हनुमान् स्वेच्छया क्लेशकारिणस्तान् निशाचरान् क्षमयन् (रावण-समीपे स्थितः) ॥ ७६ ॥

ब्रह्मा के वरदान से अपने आपको अस्त्र से उन्मुक्त जान कर (भी) वीर हनुमान् अपनी इच्छा से, क्लेश देने वाले राक्षसों को माफ करते हुए (रावण के पास खड़े रहे) ॥ ७६ ॥

ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायन्महाकपिः ॥७७

पश्चात् मिथिलोद्भवां सीतां विना (सर्वा-मपि) लङ्कां दग्ध्वा महाकपिः स रामायेष्टं निवेदयितुं प्रत्यागच्छत् ॥ ७७ ॥

फिर केवल सीता का स्थान छोड़ कर बाकी सब लङ्का पुरी जला कर महाकपि (हनुमान्) राम से प्यारी बात कहने के लिए लौट आये ॥ ७७ ॥

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् ।
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥ ७८

अमितबलबुद्धिः स हनुमान् महात्मानं रामं प्राप्य परिक्रम्य च 'सीता दृष्टा' इत्थं याथार्थ्येन निवेदितवान् ॥ ७८ ॥

अमितबलबुद्धि हनुमान ने राम के पास जाकर 'सीता जी को मैंने देखा' यह बात ठीक ठीक निवेदन करदी ॥ ७८ ॥

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।
समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९

तदनन्तरं (रामः) सुग्रीवेण सहितः समुद्रस्य तीरं गत्वा सूर्य्यसदृशैर्बाणैः समुद्र-माकुलीचकार ॥ ७९ ॥

बाद में सुग्रीव सहित रामने समुद्र के किनारे जाकर सूर्य्य के समान (जलते हुए) बाणों से समुद्र को क्षुब्ध कर दिया ॥ ७९ ॥

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलः सेतुमकारयत् ॥८०

नदीनां स्वामी समुद्रः स्वरूपमदर्शयत् । समुद्रस्य वचनादेव च (विश्वकर्म्मणः पुत्रः) नलः सेतुं बबन्ध ॥ ८० ॥

नदियों के स्वामी समुद्र ने अपने आप को प्रकट किया । समुद्र के कहने से ही (विश्वकर्म्मा के पुत्र) नल ने (समुद्र का) पुल बनाया ॥ ८० ॥

तेन गत्वा पुरीं लंकां हत्वा रावणमाहवे ।
रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥८१॥

राम तेन सेतुना लङ्कां नाम नगरीं गत्वा समरे रावणं च हत्वा पश्चात् सीतां प्राप्य महतीं लज्जां प्राप्य ॥ ८१ ॥

राम उस पुल से लंका पुरी जाकर रण में रावण को मार कर और फिर सीता को पाकर बड़ी लज्जा को प्राप्त हुए ॥ ८१ ॥

तमुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि ।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥८२

अथ रामो मानवगोष्ठ्यां तां सीतां प्रति

मर्मस्पर्शि वाक्यमवोचत् । पतिव्रता सा सीता (तद्वं) असहमाना वह्निं माविशत् ॥ ८२ ॥

फिर रामने मानव-समाज में इन सीता से अत्यन्त कड़ी बात कही । पतिव्रता सीता ने यह सहन न किया और अग्नि में प्रवेश कर गयी ॥ ८२ ॥

ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३

तदनन्तरं पावकस्य वचनात् सीतां निष्पापां बुध्वा (स्वीचकार) तेन दिव्येनाऽग्निप्रवेश-रूपेण कार्य्येण जङ्गमेन स्थावरेण च सहितं त्रिभुवनं (तुतोष) ॥ ८३ ॥

फिर अग्नि के कहने से सीता को निष्पाप जान कर (उन्हें अंगीकार किया) उस महान् कर्म्म से तीनों लोकों के स्थावर और जङ्गम सन्तुष्ट होगये ॥ ८३ ॥

सदर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ।
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४

उदारचेतसो रामस्य नित्यमृषिजातं तुतोष । सर्वैः सुरैः समर्चितो रामः प्रमुदितः सन् शुशुभे ॥ ८४ ॥

महात्मा राम से सदा ही ऋषिगण सन्तुष्ट रहते। सब देवताओं से पूजित हो प्रमुदित राम देदीप्यमान थे ॥ ८४ ॥

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५

तस्मिन् समये रामो लंकायां यातुधानेश्वरं विभीषणं राज्यारोहण विधिना संस्कृत्य कृतार्थः सन् प्रामोदत ॥ ८५ ॥

उस समय राम लंका में यातुधानेश्वर विभीषण को राजगद्दी पर बैठा कर कृतकृत्य होकर शोभित हुए ॥ ८५ ॥

देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६

रामो देवेभ्यो वरं लब्ध्वा वानरांश्च सम्यग् उत्थाप्य मित्रैः परिवृतः पुष्पक विमानेनाऽयोध्यां प्रतिष्ठत ॥ ८६ ॥

राम देवताओं से वरदान पाकर और वानरों की अच्छी उन्नति कर के मित्रों सहित पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या के लिये चल पड़े ॥ ८६ ॥

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
भरतस्यांतिकं रामो हनूमन्तमथासर्जयत् ॥८७

तथ्यो विक्रमो यस्य स रामो भरद्वाजस्य स्थानं गत्वा भरतस्य समीपे हनूमन्तं प्रेषितवान् ॥ ८७ ॥

सत्यपराक्रम राम भरद्वाज के आश्रम में पहुंच कर भरत के पास हनुमान् को भेजा ॥ ८७ ॥

पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीवसहितस्तदा ।
पुष्पकं तत्समारुह्य नंदिग्रामस्थयौ तदा ॥८८

पश्चाद् तस्मिन् समये सुग्रीवेण सहितो रामः कथां कथयन् तत् पुष्पकविमानं सम्यग् आरुह्य नन्दिग्रामं (भरततपोभूमिं) गतः ॥८८॥

फिर उस समय सुग्रीव के सहित राम कथा कहते हुए उसी पुष्पकविमान पर चढ़

कर नन्दिग्राम गये ॥ ८८ ॥

नंदिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यमुनरगाद्विभुः ॥८९

पवित्रो बन्धुभिः सहितो रामो नन्दिग्रामे जटां त्यक्त्वा सीतां पुनरुरलभ्य पश्चात् राज्यभारं प्राप्तः ॥ ८९ ॥

पवित्र तथा बन्धुओं सहित रामने नन्दिग्राम में जटाओं को दूर कर के सीता के पाने के बाद फिर राज्य पाया ॥ ८९ ॥

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९०

(रामराज्ये) प्रजाजनोऽत्यन्तप्रसन्नः सन्तुष्टः सुपुष्टो धर्म्मात्मा नीरोगो व्याधिरहितो दुर्भिक्षेण चौरादिभीत्या च रहितोऽभवत् ॥९०॥

(राम के राज्य में) प्रजालोक अत्यन्त प्रसन्न, सन्तुष्ट, पुष्ट, धर्म्मात्मा नीरोग, व्याधि रहित दुष्काल तथा चोर आदि के भय से रहित होगये ॥ ९० ॥

न पुत्रमरणं कश्चिद् द्रक्ष्यति पुरुषः क्वचित् ।
सार्वेश्वाविधवा नित्यं भविष्यंति पतिव्रताः ॥९१

केऽपि जनाः कुत्राऽपि पुत्राणां मृत्युं न अवलोकयिष्यन्ते स्त्रियश्च सदा पातिव्रत्यधर्म्मयुक्ताः सौभाग्यवत्यश्च भविष्यन्ति ॥ ९१ ॥

कोई पुरुष कहीं भी अपने पुत्रों की मृत्यु नहीं देखेंगे । स्त्रियां सदापतिव्रता और सौभाग्यवती रहेंगी ॥ ९१ ॥

न चाग्निजन्मभयमल्पिकाऽपि चाप्सु मज्जंति जंतवः ।
न वातजन्मभयं किंचिदापि ज्वरकृच्च तथा ॥९२

लेशतोऽपि बहिर्भीतिर्न । जीवा जले न निमज्जन्ति वायुसमुद्भूतं ज्वरादिकृतं वा भयं किञ्चिदपि न विद्यते ॥ ९२ ॥

तनिक भी अग्नि का भय नहीं है। लोग पानी में नहीं डूबते । वायु का भय तथा ज्वर आदि रोगों का भय बिलकुल नहीं है ॥९२॥

न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा ।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३

तत्र रामराज्ये बुभुक्षाक्लेशस्तथा चौराभयशंका न विद्यते । पुराणि देशाश्च वित्तेनान्नेन च युक्ताः सन्ति ॥ ९३ ॥

रामराज्य में क्षुधा का दुःख एवं डाकू आदि का डर नहीं। शहर तथा देश धन और धान्य से पूर्ण हैं ॥ ९३ ॥

नित्यंप्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा ।
आप्तैर्मखशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४

यथा सत्ययुगे तथा सर्वे प्रसन्नाः सन्ति । शतसंख्याकैरश्वमेधयज्ञै स्तथा भूयोभिः काञ्चनैर्यजनं विधाय- ॥ ९४ ॥

सतयुग के समान सब लोग प्रसन्न हैं । सौ अश्वमेध यज्ञों से तथा बहुत सुवर्ण से यजन करके- ॥ ९४ ॥

गवां कोट्ययुतं दत्वा विधिवद्यो विधिपूर्वकम् ।
असंख्येयं धनं दत्वा ब्राह्मणभ्यो महायशाः ॥

महाकीर्तिः विपश्चिच्च्यो धेनूनां कोटयुतं यथाविधि दत्वा विपुलं धनं च दत्त्वा ॥ ९५॥

महाकीर्त्ति राम विद्वान् ब्राह्मणों को कोटि अयुत गौएं तथा विपुल सम्पत्ति देकर ॥९५॥

राजवंशान् शतगुणान् स्थापयिष्यति राघवः ।
चातुर्वर्ण्यंच लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति ॥९६

रामो राजकुलानि शतशो गुणै र्युक्तानि स्थिरी करिष्यति । अस्मिन् लोके चत्वारो वर्णा एव चातुर्वर्ण्यं ब्राह्मणादि यथास्वंकर्म्मणि प्रवर्तयिष्यति ॥ ९६ ॥

राम राजवंशों को सैकड़ों (उत्तम) गुणों से युक्त स्थापित करेंगे । इस लोक में वे चारों वर्णों को अपने अपने कर्म्म में लगावेंगे ॥ ९६ ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकम्प्रयास्यति ॥९७

राम एकादश सहस्रवत्सराणि राज्यं कृत्वा वैकुण्ठलोकं गमिष्यति ॥ ९७ ॥

राम ग्यारह हजार वर्ष राज्य करके वैकुंठ लोक चले जायंगे ॥ ९७ ॥

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
यः पठेत् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८

इदं रामचरितं पुनीतं पापनाशकं शुभं वेदैश्च तुल्यं (अस्ति) यः पुरुष एतत् पठेत् (सः) सर्वैः पापै र्विमुच्यते ॥ ९८ ॥

यह राम चरित बड़ा पवित्र, पापनाशक, शुभ और वेदों के तुल्य है । जो पुरुष इस का पाठ करता है, सब पापों से छूट जाता है ॥ ९८ ॥

एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
स पुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९

मनुज इदं रामचरितरूपमितिहासं पठन् सन् पुत्रपौत्रैः सहितः स्ववर्गसहितश्च पंचत्वं प्राप्य स्वर्गलोके महत्त्वमधिगच्छति ॥ ९९ ॥

मनुष्य इस रामचरित रूपी इतिहास को पढ़ता हुआ मर कर पुत्रपौत्र तथा स्वगर्ण सहित स्वर्ग लोक में महत्व प्राप्त करता है ॥ ९९॥

पठन् द्विजो वाग्ऋषभत्वमीयात्,
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात्,
जनश्च शूद्रोपि महत्वमीयात् ॥१००

विप्रः (इदं) अधीयानो वाचस्पतित्वं प्राप्नुयात् (यदि) क्षत्रियः स्यात्, तदा राज्यं प्राप्नुयात्, वैश्यजनो व्यापारफलं (लक्ष्मीं) प्राप्नुयात्, शूद्रोऽपि च जनो महनीयतां प्राप्नुयात् ॥ १०० ॥

ब्राह्मण इसे पढ़ता हुआ विद्वान् होता है, यदि क्षत्रिय हो, तो राजा होता है, वैश्य व्यापार-फल (धन) पाता है और शूद्र जन महत्त्व पाता है ॥ १०० ॥

जीव का स्वरूप

एक बार भृगु जी ने भरद्वाज को कहा कि वायु ही इसको जिलाता है, वायु ही प्रयत्न कराता है और वायु ही श्वास लिवाता है तो भरद्वाज ने शंका की, कि हे भृगुजी! यदि ऐसा ही है तो फिर जीवात्मा इस देह में निरर्थक ही रहा? देह धारी के मरण काल में जीव देखने में नहीं आता, वायु ही उससे पृथक् हो जाता है। वायु के पृथक् होने पर उष्णता चली जाती है, शरीर ठण्डा होजाता है। और यदि जीव वायु ही है तो जैसे वायु का मण्डल दिखाई देता है वैसे ही जीव भी दीखना चाहिये। पञ्चमहाभूतों से निर्मित इस शरीर में जीव है यह कैसे सम्भव है। इन पांच तत्वों में एक तत्व के नाश होने पर अन्य चार तत्वों का भी नाश होजाता है। श्वास रोकने से वायु तत्व का नाश होजाता है, शरीर के भीतर के पोले भाग को भरदेने से आकाश तत्व का, उपवास करने से अग्नि तत्व का, रोग तथा दुःखादि के कारण पृथिवी तत्व का नाश होजाता है। इन तत्वों के नष्ट होने पर न जीव दौड़ सकता है, न सुन सकता है और न बोल सकता है। मैं यह गौ दान करता हूं इसका फल मुझे परलोक में मिलेगा जो ऐसा समझता है वह तो दान करके मर जाते हैं तो फिर वह गौ किसको तारेगी? गौ, गौका दान लेने वाला और देने वाला यह तीनों मरण धर्म वाले हैं वे तो इस लोक में ही मर जाते हैं फिर उनका समागम कैसे हो सकता है। जिस वृक्ष की जड़ कट जाती है वह फिर कैसे उग सकता है जो मनुष्य मर गया वह फिर कहां से आवेगा? पहले केवल बीज ही रचा गया था जिस से यह जगत् उत्पन्न होता चला आरहा है परन्तु जो मर जाते हैं वह सदा के लिये नष्ट होजाते हैं और एक बीज से दूसरा होता रहता है। यह सुन कर भृगु जी ने कहाः-

न प्रणाशोस्ति जीवस्य दत्तस्य च कृतस्य च।
याति देहान्तरं प्राणी शरीरन्तु विशीर्यते॥
न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन् नष्टे प्रणश्यति।
समिधामिव दग्धानां यथाग्निर्दृश्यते तथा॥

हे भरद्वाज! न तो जीव का ही नाश होता है और न जीव के दिये हुए दान वा कर्म का ही। जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है और शरीर मात्र का नाश होता है। शरीर के आश्रय रहने वाला जीव शरीर का नाश होने पर नष्ट नहीं होता। जैसे लकड़ियों के जल जाने पर उनके आश्रय रहने वाला अग्नि नष्ट नहीं होता ऐसे ही जीव भी नष्ट नहीं होता। तब भरद्वाज ने कहा कि जैसे लकड़ियों के जल जाने के पश्चात् अग्नि भी शान्त हो जाता है और देखने में नहीं आता ऐसे ही देह के नष्ट होने पर जीव भी देखने में नहीं आता। मेरी समझ में तो उसका भी नाश ही हो जाता है। इस पर भृगु जी बोलेः-

समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते ।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः ॥
तथा शरीर सन्त्यागे जीवो आकाशवत् स्थितः ।
न गृह्यते सुसूक्ष्मत्वात् यथा ज्योति र्न संशयः ॥

लकड़ियों के जलने के पश्चात् अग्नि अपने आश्रय भूत काष्ठ का नाश होने पर सूक्ष्म, आकाश के समान सर्वव्यापक नित्य होने से ग्रहण नहीं किया जासकता ऐसे ही जीव भी अपने आश्रय भूत देह का नाश होने पर सूक्ष्म, सर्वव्यापक और नित्य होने से देखने में नहीं आता। तात्पर्य यह है कि जैसे काष्ठ में पहले से ही अग्नि होता है काष्ठ को मथने पर उसमें से प्रकट होता है ऐसे ही जीव भी सर्वत्र है भूतादि का संयोग होने पर प्रकट रूप से जानने में आता है और वियोग होनेपर प्रकट नहीं दीखता। परन्तु इससे उसका नाश नहीं समझना चाहिये। मूर्त्तिमान् देह धारियों के शरीर में आकाश, पवन और अग्नि यह तीन मूर्ति रहित तत्त्व रहते हैं। जल और पृथिवी यह दो तत्त्व पृथिवी में रहते हैं। जहां आकाश होता है तहां पवन होता है जहां पवन होता है तहां अग्नि होता है। भरद्वाज ने कहा कि जब कोई मनुष्य कुछ कहता है तो जीव उसे कानों से सुनता है परन्तु यदि मन व्यग्र होता है तो नहीं सुनता। जब नेत्र के साथ मन रहता है तब ही जीव नेत्रों से देखता है परन्तु मन के व्याकुल होने पर आखें खुली रहने पर भी जीव नहीं देख सकता। निद्रा में मुख होने पर भी बोल नहीं सकता, नाक होने पर संघ नहीं सकता। इससे मेरी मति में मन ही जीव है। तब भृगुजी ने उत्तर दिया कि:-

न पञ्च साधारणमत्र किंचित्,
शरीरमेको वहतेन्तरात्मा।
स वेत्ति गन्धांश्च रसान् श्रुतीश्च,
स्पर्शांश्च रूपं च गुणांश्च सर्वान् ॥
पञ्चात्मके पञ्चगुण प्रदर्शी,
स सर्वगात्रानुगतोन्तरात्मा।
स वेत्ति सुखानि दुःखानि चात्र,
तद्वियोगात्तु न वेत्ति देहः ॥

पांच भूतों से उत्पन्न हुवा मन भी एक इन्द्रिय है इसलिये वह पांच विषयों को ग्रहण करता है, इन इन्द्रियों के साथ रहने वाला मन शरीर को नहीं चलाता किन्तु एक अन्तरात्मा ही शरीर को चेष्टा युक्त करता है और वह शब्द स्पर्शादि सब गुणों को भी जानता है। शरीर के सब अवयवों में रहने वाला अन्तरात्मा पञ्च भूतात्मक शरीर में रहने वाले तथा पांच गुणों वाले मन का द्रष्टा है, वह सुख दुःख का अनुभव करता है और उसका वियोग होजाने पर देह के सुख को वा दुःख को नहीं जान सकता।

आपोमयमिदं सर्वमापो मूर्त्तिः शरीरिणाम् ॥
तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्व भूतेषु लोककृत ॥
आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥

यह सब विश्व तथा देहधारियों के शरीर जलमय है उस जल में मन के विषै दीखने

वाला आत्मा रहता है, वह आत्मा सब लोकों को उत्पन्न करने वाला ब्रह्मारूप है। वह प्रकृति के गुणों से युक्त होजाने के कारण क्षेत्रज्ञ कहाता है परन्तु जब वह प्रकृति के गुणों से मुक्त होजाता है तब परमात्मा कहलाता है। वह सब लोकों के हित का कर्त्ता, सब भूतों का आत्मा "पद्मपत्र मिवाम्भसा" की भान्ति स्थूल और सूक्ष्म देह में रहते हुए भी उससे भिन्न है। सत्त्व, रज और तम यह तीन जीव के गुण हैं।

सचेतनं जीव गुणं वदन्ति,
स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम्।
अतः परं क्षेत्रविदो वदन्ति,
प्रावर्त्तयत्यो भुवनानि सप्त॥

आत्मा चेतनायुक्त तथा जीव के गुणों वाला है, वह स्वयं चेष्टा करता है और सब से चेष्टा करवाता है। जिनको आत्मा का ज्ञान है वे कहते हैं कि आत्मा जीव से जुदा है और उसको ही सात लोकों के उत्पन्न करने वाला परमात्मा कहा है।

न जीव नाशोस्ति हि देह भेदे,
मिथ्यै तदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति,
दशार्द्धतैकस्य शरीर भेदः॥

देह का नाश होने पर भी जीवका नाश नहीं होता है तो भी अज्ञानी मनुष्य मिथ्या ही कहते हैं, कि जीव मर जाता है। जीव देहपात होने के पश्चात् इस देह को छोड़ कर दूसरे देह में जाता है और शरीर के नाश को मृत्यु कहते हैं। जिन मनुष्यों को तत्त्व-ज्ञान हो जाता है वे ही विवेकी मनुष्य अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से आत्मा को देखते और जानते हैं।

(भूमानन्द ब्रह्मचारी)

बुद्धि और लक्ष्मी का संवाद

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥

वरुण देवता मुझको बुद्धि देवे, अग्नि प्रजापति मुझे तत्त्वज्ञान के उपयोगिनी बुद्धि को प्रदान करें और इन्द्र और वायु पदार्थ को धारण करने वाली बुद्धि को प्रदान करें। धाता धारण करने वाला परमेश्वर मेरे निमित्त बुद्धि को देवे। स्वाहा यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो।

कोई लक्ष्मी, कोई स्वर्ग और कोई बहिश्त और रोज़ी को मांगता है पर वेद में बुद्धि तत्व को परम मान कर उसी के प्राप्त होने के लिये प्रार्थना की गई है। जिस के पास बुद्धि है उस को सब कुछ स्वयं प्राप्त होता है। धर्म, भक्ति,

धन, सम्पत्ति बुद्धि के ही प्रभाव से मनुष्य को मिलते हैं। और भी कहा है।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम।

इस पर एक दृष्टान्त है कि एक समय लक्ष्मी और बुद्धि में झगड़ा भिड़ गया। लक्ष्मी बोली जिस के मैं होती हूं उस के द्वार पर सहस्रों बुद्धिमान् और विद्वान् खड़े रहते हैं। बुद्धि बोली मेरे बिना लक्ष्मी, सुख और जीवन कुछ भी नहीं रहता है। चलो किसी पुरुष पर अपनी २ करामात अजमायें। लक्ष्मी बोली यह निर्बुद्धि गडरिया भेड़ें चरा रहा है इस को मैं अभी राजा बना देती हूं। यह कह कर रत्न जटित सुवर्ण के खड़ाऊं उस के आगे रस्ते में डाल दिए। चरवाहे ने वह उठा कर पहर लिये। तो लक्ष्मी ने एक सौदागर को प्रेरणा कर उस के निकट भेजा और पूछा कि वह खड़ाऊं हम को देदो और मुख मांगा मोल लेलो। वह बोला मैं जङ्गल में भूखा रहता हूं। श्याम को जाकर रोटी खाता हूं मुझे पांच सेर चना भुंजवा कर देदो जिससे दोपहर को मैं अपना निर्वाह कर लूं। सौदागर ने ऐसा ही किया। फिर लक्ष्मी ने उसको इसी प्रकार से रत्न जटित सुवर्ण के खड़ाऊं दिये। वह उन पर चढ़ कर घूमने लगा। पहले खड़ाऊं को सौदागर लेकर एक राजा के यहां गया। उस को राजा के मन्त्री और जौहरियों ने निरखा तो अरबों रुपये का मूल देख कर चकित हुए। राजा ने पूछा यह तुम कहां से लाये हो। सौदागर ने जल्दी में कहा कि महाराज! एक राज कुमार से लाया हूं। राजा बोला जो ऐसी कीमती खड़ाऊं पहरता है वह प्रभूत धनाढ्य होगा। अतः हमारी पुत्री का सम्बंध उस के साथ में कराओ पीछे इस का मूल्य दिया जावेगा। सौदागर यह सुनकर बड़े असमंजस में पड़ गया कि अब क्या करना चाहिये। जो हो उसीके समीप चलो। आकर देखा कि वैसीही खड़ाऊं पर चढ़ा डोलता है। पूछा यह कहां से आये? तो उत्तर दिया वैसे ही पड़े मिल जाते हैं। क्या इनके भी पांच सेर चने दोगे? सौदागर ने विचारा यह कोई सिद्ध है पर निर्बुद्धि है। इसी को राजकुमार बनाना चाहिये। तब उसने सहस्रों मन लोहा खरीद कर मंगाया। और वह उसके शिर से स्पर्श करने से सब सुवर्ण बन गया। सौदागर ने वहां के राजा को भी खूब धन दिया और हाथी घोड़े आदि सब वस्तुएं खरीदीं। लक्ष्मी का अनुग्रह था जितने लोहे से शिर लगादे सब सुवर्ण होजावे। सौदागर ने बेटी वाले राजा को लिखा कि राजकुमार ने आपका सम्बन्ध स्वीकार कर लिया है। लग्न मुहूर्त ठैरा कर अमुक दिन बरात आवेगी। यह सुन राजा की खुशी का पारावार न रहा। गड़रिया भी घोड़े हाथी और बहुत सिपाही देख कर भय भीत हो कांपता हुवा बोला। यह यहां कैसे आये मेरी भेड़ें तो इन के खेतों में नहीं चरीं? यह कह कर सौदागर के आगे रोने लगा। सौदागर बोला तुझे कोई भय

नहीं है तू किसी से बात नहीं करना जो कुछ कहना हो मेरे कान में कह देना । और जो कुछ मैं कहूं वह करना। यदि ऐसा नहीं किया तो उसी समय मार दिया जावेगा। उसको राजकुमार बना कर, हाथी पर सवार कर आभूषणों से सजा गाजे बाजे से बरात लेकर चला। जब गोरवे बरात आई तो उसकी अगुवानी लेने के लिये राजकुमार और राज कर्मचारी बड़े ठाट बाट से आये। उनको देख कर वह डर गया। सौदागर के कान में कहने लगा कि कहीं मुझे पकड़ने को तो नहीं आये हैं! उसने कहा नहीं चुपरहो। जो मैं कहूं सो करना नहीं तो मारदिये जाओगे। वह तुरन्त चुप होगया। अगले राजकुमार ने देखा कि महाराज कुमार ने सौदागर के कान में कुछ बात कही है तब सौदागर को बुला कर पूछा कि महाराज कुमार ने आपको क्या कहा है। उत्तर दिया कि जो आगुवानी को आये हुए हैं इन सब को दश दश लाख अशरफी देदो। यह सुन कर राजकुमार और सब आश्चर्यान्वित होगये कि इनकी जबान पर हज़ार दो हज़ार तो आते ही नहीं इसी कारण यह सौदागर के अतिरिक्त और किसी से बात चीत नहीं करते। तदनतर विवाह कार्य फेरे पर्यन्त सौदागर के कथनानुसार सब किया गया। राजकुमार सौदागर के सिवाय और दूसरे से नहीं बोलता। फेरों के अनन्तर वह राज महल में भेजा गया। वस्त्रों से और भूषणों से सजा हुवा एक बहुत सुन्दर पलंग उसके लेटने के लिये बिछाया गया। तदनतर सोलह शृंगार और बत्तीस आभूषणों से सुसज्जित होकर थाल में चतुर्मुखा दीपक जला कर झनक झनक करती हुई राज कन्या उसके समीप आई। झाड़ फानूसों से सजे हुए जगमगाहट करते हुए भवनों को देख कर और राजकुमारी को आता हुवा देख कर मन में सोचने लगा कि, मैं सुनता था कि भूत और चुड़ैलों के ऐसे महल होते हैं यहतो चुड़ैल है मुझे खानेको आती है। हाय! अब कैसे बचूं। अब तो इस महल से कूद पड़ना चाहिये। यह सोच कर वह पीछे के छज्जे को पकड़ कर नीचे को लटकने लगा। राजकुमारी ने देखा कि यहां राजकुमार नहीं हैं। कदाचित् दूसरे महल में हो। उसने सोचा अब तो यह चली गई है न जाने इन महलों में कितनी चुड़ैल होंगी। अतः वह अब की बार आकर मुझे खाजावेंगी। अब गिर करके मरना ही ठीक है। जब इस प्रकार वह गिरने को तयार हुवा तब बुद्धि लक्ष्मी से बोली कि देख इस को राजा बनाना तो एक ओर रहा मेरे बिना जीवन भी नहीं रह सकता। लक्ष्मी ने कहा बहन मैंने हार मानी अब तू आपना प्रभाव दिखला। बुद्धि उसमें तुरन्त प्रवेश कर गई। उसको चेत हुवा कि यह तू क्या कर रहा है। वह तुरन्त उठकर पलंग पर विराजमान हो गया। राजकुमारी भी सब महलों को देख कर फिर वहां ही आई और उन से पूछा आप कहां चले गये थे। उसने तुरन्त उत्तर दिया कि यह महल अच्छे नहीं बने हैं। इनमें पुष्कल

पवन नहीं आती है मेरा चित्त घबड़ा जाने से बाहर हवा खाने गया था। यह सुन कर राज पुत्री चुप होगई। और वह बुद्धि के प्रभाव से राजा बन गया।

अतः हिन्दू धर्म में परमात्मा से बुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है। प्रातःकाल सूर्य के सन्मुख गायत्री जपते हुए बुद्धि के लिये प्रार्थना है। "धियोयोनः प्रचोदयात्" सूर्य मण्डल के तेज के ध्यान से बुद्धि बढ़ती है। सदाचार, गो-घृत, लौंग, जौ, ब्राह्मी, बच, त्रिफला, माल-कांगनी, सत्संग; सद्ग्रन्थों का अवलोकन इत्यादि बुद्धि के बढ़ाने वाले हैं। विशेष कर परमात्मा के अनुग्रह से यह सब साधन और धारणा-वती बुद्धि प्राप्त होती है। श्री भगवान् ने कहा है:-

"बुद्धौ शरण मन्विच्छ कृपणा फल हेतवः"

सेवा-धर्म

(ले० पं० श्री० किशोरी दास जी बाजपेयी)

जगत् की प्रत्येक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बात चित्त के द्वारा जानी जाती है। चित्त जितना ही उज्वल होगा, उस में प्रत्येक भाव उतनी ही सफाई से प्रस्फुरित होगा। चित्त की पवित्रता और उज्वलता योग से होती है। चित्त के एकाग्र करने का नाम योग है। जिसका चित्त जितना एकाग्र होगा-जो जितना अधिक योगी होगा-उसे उतना ही साफ जगत का प्रत्येक पदार्थ दीख पड़ेगा। परन्तु, कई ऐसे भी गहन विषय हैं, जिन में निपुण योगियों का भी चित्त सन्देह-दोलायित होजाता है, जैसे भगवान् का स्वरूप और गुण। इसी कोटि में सेवा-धर्म्म भी है। कहते हैं:-

सेवाधर्म्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

यह बात ध्रुव सत्य है। सेवा-धर्म्म का ही नाम 'निष्काम कर्म्म-योग' अथवा 'कर्म्म-योग' है। कर्म्म-योग में बड़ी बड़ी गुत्थियां हैं, जिनका समझना-समझाना कुछ सहज नहीं। उसके विशेषज्ञोंने कहा है:-

कर्म्म-योग या सेवा-धर्म्म की यह महत्ता इसीसे समझ में आसकती है कि समस्त संसार इसी के सहारे स्थित है। जिस दिन जगत् से सेवा-धर्म्म के सिद्धान्त का सर्वथा अस्तित्व मिट जायगा, उस दिन उसके साथ ही यह जगत् भी मिट जायगा। इस बात को ध्यान से देखिए, समझ में आजाय गी। केवल मानव-जगत् की कौन कहे, पशु पक्षी आदिकों में भी यही धर्म्म काम कर रहा है। इसी धर्म्म से उल्लसित होकर चित्त कहता है:-

'सेवा' और 'सेवा-धर्म्म' इन दो शब्दों के अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए। इनमें क्रमशः वही अन्तर है, जो साधारण कर्म में और कर्म्म-योग में। सेवा से मेरा मतलब सेवा-वृत्ति से है, जिस के लिए कहा गया है:-

कैसे अनुभव से तुले हुए वाक्य हैं?

सेवा ही दुःख रूप और सेवा ही सुख का मूल है। यदि सकाम सेवा—अपनी जीविका के लिए अथवा और किसी काम के लिये की जाय, तो वह अवश्य श्वद्वत्ति है। परन्तु यदि परोपकार के भाव से निःस्वार्थ उसका अवलम्बन किया जाय, तो फिर वही मोक्ष का सीधा मार्ग है। हां, सेवा-धर्म्म के व्रती को भी कुछ न कुछ स्वार्थ भी अवश्य हो जाता है, पर अनायास और अनिच्छित। उसकी वह इच्छा नहीं करता। वह तो अपना चित्त प्रसन्न करने के लिये धर्म्म जान कर ऐसा करता है। एक मनुष्य बाग में आम के फल लाने की इच्छा से जाता है। उसके मन में, स्वप्न में भी, यह बात नहीं कि बगीचे में फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध से आनन्द लूटूंगा। परन्तु जब वह बाग में जाता है, तो बिन बुलाये और बिना चाहे ही वह, लोकोत्तर सुगन्ध उसका पीछा करती है, जो घर में पड़े हुए शेख चिल्ली को स्वप्न में भी दुर्लभ है। तात्पर्य्य यह कि सेवा-धर्म्म से लोक और परलोक दोनों बनते हैं। अमरीका के प्रेज़ीडेण्ट विलसन ने क्या यह सोच कर सेवा-व्रत ग्रहण किया था कि आगे चल कर मैं अमरीका का राष्ट्र-पति इस सेवा के बदौलत बनूंगा? नहीं, उस महापुरुष के मन में यह बात कभी न थी। वह तो धर्म्म से प्रेरित होकर सेवा में लगा था। निःस्वार्थ सेवा का मूल्य बड़ा भारी होता है, उसे कोई चुका नहीं सकता। फिर भी, जिसके पास जो है, वह उसे ही बदले में उपस्थित करता है। भगवान् जो इस सेवा का फल देंगे, सो तो अलग, किन्तु जनता के पास जो बड़ी से बड़ी चीज है, वह उसे अपने व्रती के चरणों पर न्यौछावर कर देती है। अमरीका में प्रेज़ीडेण्ट का पद बड़ा ऊंचा है। जनता ने इस पद पर उसे बैठाया। किन्तु उसकी सेवा का यह गौण फल है। मुख्य फल तो मोक्ष है। हां, यदि इसी गौण फल की इच्छा रख कर कोई सेवा या कर्म्म करे, तो फिर वह इसे ही प्राप्त कर सकेगा, सो भी कठिनाई से, परन्तु फिर वह उस दुर्लभ मोक्ष-सुख का अधिकारी कदापि नहीं। उसे तो वह मज़दूरी मिल जायगी, जिस के लिये उसने काम किया है और नहीं। वह विशेष का हकदार नहीं। यही कर्म्म और निष्काम कर्म में अन्तर है। अन्तर, महान् अन्तर!

साधारण जन समझा करते हैं कि दूसरे किसी को पानी पिलाना, भोजन देना या किसी विपत्ति में फंसे हुए को उससे बाहर निकालना ही सेवा-धर्म्म है। नहीं, यह बात नहीं है। सेवा-धर्म्म का क्षेत्र बहुत विशाल है। जिसकी जितनी समझ या पहुंच है, उतनी छलांग मारता है। हम यहां समस्त सेवा-धर्म्म के क्षेत्र को सुगमता के लिए दो क्षेत्रों में बांट सकते हैं—शारीरिक और मानसिक। शारीरिक सेवा उतनी कठिन नहीं, जितनी मानसिक। इनके सारल्य और काठिन्य के अनुसार ही फल में भी तारतम्य है। मानसिक-सेवा का फल महान् है। हमें सन्देह है कि

हमारे इस 'मानसिक-सेवा' शब्द से कोई महाशय उलटा अर्थ न समझ बैठें। वे कहीं जनता की इस प्रकार मानसिक सेवा न करने लगें, जैसे भगवान् की मानसिक पूजा की जाती है। कोई गरीब दुःख में फंसा है, तो आप अपने बंगले में बैठे बैठे, अपने ख़याली उपायों द्वारा हवाई ढंग से, उसे उस दुःख से पार करने लगें और सोचते रहें कि इस सेवा से हमें अक्षय फल मिलेगा नहीं, यह सेवा थोड़ी ही है, यह तो कायरता है। सेवा तो तुम्हारी तब गिनी जायगी, जब बंगले से बाहर निकल कर और लंगोट कसकर उस बेचारे विपन्न को मुसीबत से छुड़ाने के लिये भर-पूर परिश्रम करोगे। तभी तुम्हें कुछ सन्तोष भी होगा। इस विषय को हम जरा अधिक साफ करते हैं।

दुखियों के शारीरिक दुःख दूर करने के लिये जो आप उनकी सेवा अपने शरीर से करेंगे, वह शारीरिक सेवा होगी और उसके लिये जो कुछ आप चित्त से उपाय आदि सोचेंगे, वह मानसिक हुई। यदि किसी के मन को उन्नत बनाने के लिये आप विविध उपदेश देकर मार्ग पर लायेंगे, तो यह भी मानसिक सेवा हुई और मुख्य मानसिक यही है तथा मुख्य और ऊंचे दर्जे की सेवा भी यही है। इसी का फल महत् है। अज्ञान में फंसे हुए जीवों को ज्ञान-दान कर धर्म्म-पथ पर लगा, उन्हें इस योग्य मानसिक बल देना कि वे इस लोक को सुख से पार कर अन्त में भगवान् की प्राप्ति कर सकें, ऐसे कार्य्यों की सिद्धि के लिये निष्काम कर्म्म-योग और भगवान् की भक्ति आदि शुभ साधनों का प्रचार करना आदि सब मानसिक सेवाएं हैं। ये सेवाएं ऐसी हैं, कि इनसे कोई उऋण नहीं हो सकता।

जनता की मानसिक सेवाओं का फल ऋषियों ने समझा था। तभी तो उन्होंने अपना समस्त जीवन इस पुनीत कार्य्य में लगा दिया था। वे कैसे-कैसे अमूल्य विचार हमें देगये हैं? क्या संसार कभी इन से उऋण होगा? व्यास जी ने दया कर कितने वाङ्मय का निर्माण किया है? कुछ ठिकाना है? महाभारत की विशालता देखिए। उसके विचारों का प्रकर्ष देखिए, जिसका एक लघुतम अंश भगवद्गीता है, जिसने आज इस उन्नति के युग में भी संसार के ज्ञानियों और वैज्ञानिकों को आश्चर्य्य में डाल रक्खा है। एक-एक पुराण की पराकाष्ठा का निरीक्षण कीजिए। एक श्रीमद्भागवत ही देखिए, जिसके विषय में कहा जाता है:-

"विद्यावतां भागवते परीक्षा"

और तो क्या, सब उपनिषदों की मीमांसा 'उत्तर-मीमांसा' का अवलोकन कीजिए। किस कौशल और दिव्य ज्ञान से श्रुतियों का सामंजस्य किया है! यही दशा वाल्मीकि आदि ऋषि-मुनियों की है। अहा! उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों की टक्कर को कोई ग्रन्थ क्या आज भी दुनिया की किसी भाषा में बन सका

है ? पाणिनि का सा व्याकरण किसी भाषा का है? यह सब हमारे ही यहां क्यों है, औरों के यहां क्यों नहीं? इसी लिए कि हमारे पूर्वज मानसिक सेवा का फल समझते थे। उन्होंने उस के लिए सब कुछ किया अपना जीवन लगा दिया।

ये सब पुरानी बातें हैं। इन्हें छोड़ दीजिए। अभी नयी बात लीजिए। समर्थ स्वामी रामदास, गुरु नानक, महात्मा कबीर, परम अछूतोद्धारक स्वामी रामानन्द और स्वामी दयानन्द जी महाराज सरस्वती आदि महामना आत्माओं ने जनता की जो सेवा की है, वह क्या कुछ मामूली है ? हम उन से कभी उऋण नहीं हो सकते। इस सेवा के बदले परम पिता ने उन्हें अक्षय्य पद तो दिया ही, साथ ही उनके नाम और कीर्ति भी अजर, अमर और अक्षय्य होगये।

स्वामी विवेकानन्द जी महाराज की लोक-सेवा अनुपम हुई है। उन्होंने पश्चिमीय देशों की सेवा अपने उत्तम विचारों के दान रूप में और भारत की सर्वथा की है। आज, उनकी बदौलत, सैकड़ों 'श्री रामकृष्ण सेवाश्रम' स्थान-स्थान पर स्थापित हैं, जिनमें लाखों रोगियों की यथार्थ चिकित्सा करके उन्हें रोग-मुक्त किया जाता है। कैसी सेवा है ? "नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते।" उनकी ये सेवा-संस्थाएं अमर-कीर्ति हैं।

हम भारत-वासियों के लिए फिर एक बार सेवा-धर्म की दीक्षा लेने की जरूरत है। देखो तो सही; जिन में किसी समय सेवा-धर्म का नाम भी न था, वे अंग्रेज-जाति के लोग, सात समुद्र पार करके हमारी सेवा करने यहां आते हैं। फिर चाहें उनके मन में कुछ भी क्यों न हो, चाहें वे ईसाइयत फैलाने की ही इच्छा से क्यों न आते हों, पर आते हैं और सेवा करते हैं, सेवा। जिस भारतीय का कुष्ठ देख कर आप दूर दूर भागेंगे और उसे पास न फटकने देंगे, वे उस की भी सेवा अपने हाथों करते हैं। इस प्रकार जिस की सेवा की जायगी, फिर वह क्यों न उस सेवा-व्रती की ओर झुकेगा ? वह उस की ओर झुकेगा और उसका मत-मजहब, सब कुछ, स्वीकार कर लेगा, क्योंकि जिस मत में सेवा-धर्म्म है, दया है, वही सच्चा मत है, यह सबकी हक़्क़त बात है। लोग स्वतः उधर आकृष्ट होते हैं। आप उन्हें देखकर डाह न कीजिए। उनसे सेवा करना सीखिए।

अब अन्त में हम यही कहना चाहते हैं कि जो पुरुष अपना, अपने देश और अपनी जाति का श्रेय करना चाहें, उसके लिए सबसे पहला और सब से अन्तिम साधन सेवा-धर्म्म है। इसी की उपासना करनी चाहिए।

गो-भक्ति ।

(ले० श्री० पं० गङ्गाप्रसाद जी अग्निहोत्री जबलपुर)

इस नश्वर संसार में इस समय जितने देश विद्यमान हैं, उनमें भारत बहुत प्राचीन और पुराणतम देश है। मनुष्य की विकसित बुद्धि अपनी जाति तथा देश की जो उन्नति करती है, उस उन्नति का भारत न जाने कितनी बार सुखानुभव और उसके पतन का दुःखानुभव कर चुका है। भारत के आदिम निवासी प्राचीन आर्य्य विद्वानों की विकसित बुद्धिके प्रभाव से भारत जिस समय उन्नति के उच्चतम शिखर पर नरीनृत्य कर रहा था समस्त विदित विश्वका दीक्षा गुरु बना हुवा था उस समय के सन्तान प्रेमबद्ध आर्य्योंने हमारी उन्नति का यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया था। उन्होंने अपने साहित्य में हमारी उन्नति की रक्षा के अमोघ उपायों का यथेष्ट उल्लेख कर रक्खा है। हम लोगों ने अपनी उपेक्षा और अकर्मण्यता को इतना बढ़ने दिया कि उनसे अनुचित लाभ उठा कर विदेशियों ने उसका बड़ा भारी समूह अपने हम्मामों का पानी तपाने में जला डाला। जो साहित्य इस समय बच रहा है, उस से भी हमारी वर्तमान तामसी बुद्धि हमें लाभ नहीं उठाने देती।

भारत के प्राचीन आर्य्यों को अनुभव से जब यह ज्ञात हुआ कि संसार में मनुष्य अतुल धन, अपार धरा और अमित अधिकार का एकाधिकारी होने पर भी यथेष्ट शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता-इस से यह स्पष्ट है कि मनः शान्ति के लिए किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा है-तब उन्होंने उस मनः शान्तिदायक वस्तु की खोज आरम्भ की। सुख की कुंजी खोज ही है। जो लोग खोज के सच्चे भक्त होते हैं, वे उस की उपासना से स्वयं सुखी होते हैं और अपने साथियों को भी सुखी बनाते हैं। तात्पर्य्य, यह है कि आर्य्यों की खोज ने ब्रह्म विद्या का आविष्कार किया। उसके प्रभाव से उन्होंने मनः शान्ति और मनः शान्ति से कल्याण की प्राप्ति की।

मनःशान्ति और कल्याण की खोज ने जब उन पर यह प्रकट कर दिया कि उन्हें प्राप्त करने के लिए सात्विक भोजन अनिवार्य्य है, तब उन्होंने सात्विक भोजन की खोज की। उनकी खोज ने प्रकट किया कि धरती का कर्षण करने से उससे गेहूं, चना, चावल और गुड़ शर्करादि जो पदार्थ पैदाकर बनाये जाते हैं, उन से बढ़ कर अन्य सात्विक भोजन हो नहीं सकते। बस, इस खोज के लगते ही उन लोगों ने कृषि का महत्व बढ़ाया और उसके करने में बड़े-बड़े विद्वद्धुरीण ऋषि-महर्षियों ने भाग लिया। कहना न होगा कि कृषिकर्म ने शीघ्र ही यह प्रकट कर दिया कि कृषि का मूलाधार गोवंश ही है। गोवंशसे कृषिको जो सहायता मिलती है, वह तो अमूल्य है ही, पर, उससे जो गव्य पदार्थ मिलते हैं, वे अद्वितीय हैं। सो, इस खोज के लगते ही आर्य्य लोगों

ने गो-कुल के परिपालनार्थ 'गवायुर्वेद' का निर्माण किया। उसकी शिक्षा का खासा प्रचार किया और कृषि तथा गो-धन की सहायता से भारत को धनधान्यपूर्ण कर उसे अपने समकालीन सब देशों का शिक्षा-गुरु बनाया। एक हमारे पूर्व पुरुष थे, जिन्होंने अपनी विकसित बुद्धि और बाहुबल से आत्मजीवन की रक्षा के अनिवार्य्य साधन भोज्यान्नों की खोज की और उनका प्रचार किया। एक हम लोग उनके वंशज हैं, जो अपने पूर्वजों की कमाई को घर बैठे खोते जाते हैं! उस की रक्षा की तिलमात्र भी चिन्ता नहीं करते! विदेशी लोग हमारे गोधन को अनेक प्रकारों से लूटते जाते हैं। हम लोग, सब प्रकार अपने गोधन की रक्षा करने में समर्थ होने पर भी, हाथ पर हाथ धरे, टुक टुक देखा करते हैं। पर, उसकी-अपने जीवनाधार अद्वितीय धन की-तिलमात्र भी चिन्ता नहीं करते। उन स्कूलों और कालेजों के खोलने में धन लगाते जाते हैं, जिन में पढ़कर हमारे बालक आत्महित को देखने के लिए अन्धे होजाते हैं। जिस गोरिपालन की शिक्षा के प्रचार से भारतीय गोधन की पूरी-पूरी रक्षा और वृद्धि की जासकती है, उस के लिए हम फूटी कौड़ी भी नहीं खर्च करते! नाना प्रकार की थोथी बातें बना कर गोरक्षा के प्रश्न से जी चुराते रहते हैं। रायबहादुरी और रायसाहबी खरीदने के लिए धन है; पर, गोरिपालन की शिक्षा के प्रचारार्थ धन नहीं है! प्रचार की बात तो दूर की वस्तु है। गो-रक्षा की चर्चा करने वाले के पत्र का उत्तर देने के लिए अवकाश का दान तक नहीं है। जिस भारत भूमि में पैदा होकर महर्षि च्यवन कहते हैं कि संसार में ऐसा कोई धन नहीं है, जो गोधन से बढ़कर मनुष्य का ऐहिक वा पारमार्थिक हित कर सके, उस गो-धन के लिए वर्तमान भारतीय शिक्षा-सूत्र-प्रेमी सधन जन सत्संग और भगवद्भक्ति की माला फेरने में ही अपने कर्तव्य कर्म्म की इतिश्री मान लेते हैं। वे इस बात का तनिक विचार भी नहीं करते कि केवल माला टरकाने से सब कुछ हो जाता, तो चक्रवर्ती राजा दिलीप और नहुष एक एक गौ की रक्षा के लिए अपने प्राण और राज्य देने को क्यों उद्यत हो जाते? गो-रक्षा की भर-पेट उपेक्षा कर जो लोग गोपाल श्रीकृष्ण के नाम का केवल जप कर कल्याण पद के इच्छुक बनते हैं, उन्हें गोपाल श्रीकृष्ण के निम्नाङ्कित सारगर्भित उपदेशों पर गंभीर भाव-पूर्वक मनन और चिन्तन करना चाहिए -

गावोऽस्मद्दैवतम्।

भागवत

अर्थात् गौ हमारी आराध्य देवता है।

अपहाय निजं कर्म्म, कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापा, धर्म्मार्थंजन्म यद्धरेः॥

महाभारत

अर्थात् धर्म्म-रक्षा के लिए जिस हरि को अवतार धारण रूप कर्म्म करना पड़ता है, उस

हरि का केवल नाम जप कर जो अपने कर्तव्य कर्म्म की इति श्री करते हैं, वे इस बात को जान रखें कि वे नाम-जाप के कारण हरि के प्रेमी भक्त नहीं हो सकते; उलटे वे पापी और हरि के शत्रु हैं।

उक्त वचनों से यह बहुत स्पष्ट है कि जिन लोगों पर श्रीकृष्णने गो-वंश के भरण-पोषण का प्रबन्ध रक्खा है। वे लोग जब तक गो-वंश की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं करेंगे, तब तक उनकी अन्यान्य भक्ति-भावना-द्योतक सब चेष्टाएं व्यर्थ और निष्फल हैं। इसमें बिन्दु भर भी शंका नहीं है।

गोपाष्टमी के दिन अथवा नित्य चन्दन अक्षत, रोरी और पुष्पमाला से गौ की पूजा करना उसकी सच्ची भक्ति नहीं है। उसकी सच्ची भक्ति यही है कि वह गवायुर्वेद की विधि से परिपालित की जाय। इस समय भारत की गो-भक्त जनता में गो-परिपालन की विधि का सर्वथा लोप हो गया है। गो-साहित्य के प्रचार द्वारा शिक्षा-प्रेमी जनता में गो-परिपालन की विधि का पुनः प्रचार कर तदनुसार परिपालन करना ही सच्ची गो-भक्ति है। सच्ची गो-भक्ति से ही गो-लोक का प्रवेश पत्र मिल सकता है।

आशा है कि 'भक्ति' के गो-भक्त पाठक इस लेख को पढ़कर गो-साहित्य का सदादर्त अवश्य ही खोलेंगे।

महात्माओं के वाक्य

वही लोग मुक्त हैं जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है बाकी लोग देखने में स्वतंत्र मालूम होते हैं मगर वास्तव में वह बन्धन से जकड़े हुए हैं।

फिजूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

जिसे उचित अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है पर, जो योग्य-अयोग्य का ख़याल नहीं रखता उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

यदि किसी को अपने से प्रेम तो है उसको पाप की ओर जरा भी न झुकना चाहिए।

लालच द्वारा एकत्रित किए हुए धन की कामना मत करो क्योंकि भोगने के समय उस का फल तीखा होगा।

झूठ और निन्दा के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो फौरन ही मर जाना उत्तम है, क्योंकि इस तरह मर जाने से नेकी का फल मिलता है।

जो लोग अपने मित्रों के दोषों की खुले आम चर्चा करते हैं, वह अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे?

संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु-वाणी को सहन कर लेता है।

वेद भी अगर विस्मृत हो जांय तो फिर याद कर लिए जा सकते हैं, मगर सदाचार से यदि एक बार भी मनुष्य गिर जाय तो, सदा के लिए अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

यदि कोई आदमी मूर्ख और अज्ञानी है तो केवल मौन व्रत धारण करने से मुनी नहीं हो जाता, बल्कि वह बुद्धिमान् आदमी जो भलाई और बुराई की तुलना करके भलाई को ग्रहण करता है मुनी है।

काम के समस्त वन को काट डालो, काम के वन से भय उपस्थित रहता है। जब तुम वन को और उस के छोटे पौदों को काट डालोगे तो तुम वन से छूट जाओगे और मुक्त हो जाओगे।

संसार को छोड़ कर तपस्वी हो जाना कठिन है, संसार को भोगना भी कठिन है, आश्रम का जीवन भी कठिन है, घर दुःखदाई है। बराबर वालों की साथ रहना भी दुःखद है, दुःख सहित भ्रमण शील भिक्षुक ही सब से श्रेष्ठ है।

यदि मनुष्य पर दोष दृष्टि रखता है और स्वयं सदा अपराध करने की वृत्ति रखता है तो उसके विकार बढ़ेंगे और वह मनः विकारों के दमन करने से बहुत दूर है।

भूसुरों का कर्मक्षेत्र में स्वागत।

ऋषिवंशजो तुम्हारा, स्वागत है आओ आओ।
भूदेव दिव्यता फिर; द्विजकुलमें लाओ लाओ।

आशाएं धर रही है तुमपर ही देश माता।
सन्मान पूर्वजों का, फिर पूर्ववत् बढ़ाओ ॥२॥

जग पूज्य बनके अब, क्यों अपमान सह रहे हो?
विप्रो! स्ववैशको फिर, गौरव शिखर चढ़ाओ।

जगको प्रकाशमें ला, क्यों लीन हो तिमिरमें?
हे ज्ञान सूर्य जगका, अज्ञानतम नशाओ ॥४॥

द्विज कुलकी दुर्दशा लख; संताप हो रहा है।
तप तेज पूर्ण प्रतिभा; जग शिक्षको! दिखाओ।

सोचो तो भूसुरों जब; ये शिर गिरेंगे नीचे।
तब पैर क्यों न ऊंचे, होंगे तुम्हीं बताओ?"

गिरने से ही तुम्हारे; भारत गिरा हुआ है।
आसीन हो स्वपदपर, संघर्षको मिटाओ ॥७॥

हो धर्म धनसे रीता; भारत चला रसातल।
हे धर्म प्राण जीवन; फिर धर्मको जगाओ ॥८॥

उन्नति के उच्च पदपर, कैसे हों अग्रसर हम।
सदुपाय भूसुरो! वह; सत्वर हमें सुझाओ॥

उन्नतिका मूल कारण; जातीय संगठन है।
द्विजकुलको संगठित करके; गौरव अतीत पाओ।

(भारतमित्र)

भजन

अब की टेक हमारी, लाज राखो गिरधारी ॥
जैसी लाज राखी अर्जुन की भारत युद्ध मझारी।
सारथि हो के रथ को हांको चक्रसुदर्शनधारी॥
भक्तन की टेक न टारी ॥ १ ॥
जैसी लाज राखी द्रोपदि की होने न दीनि उघारी।खैंचत खैंचत दो भुज थाक्यो दुःशासन पचहारी । चीर बढायो मुरारी ॥ २ ॥
सूरदास की लाज राखो अब को है रखवारी।
राधे राधे श्रीवर प्यारो श्रीवृषभानदुलारी ।
शरण तक आयो तुम्हारी ॥ ३ ॥

२

अब हौं कासों वैर करौं ।
कहत पुकारत प्रभु निज मुखते ।
घट घट हौं विहरौं ॥
आपु समान सबै जग लेखो ।
भक्त न अधिक डरौं ।
श्रीहरिदास कृपा ते हरि की ।
नित निर्भय विचरौं ॥ १ ॥

३

अब तुम कब सुमरोगे राम,
निबड़ा दो दिन का मिजमान ॥
गरभापन में हाथ जुड़ाया,
निकल हुवा बेईमान ॥
बालपने में खेल गुमाया,
तारुनपन में काम ॥
बुढ़ेपन में कांपन लागा,
निकल गया अक्लान ॥
झूठी काया झूठी माया,
आखर मौत निदान ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधु,
यही पोदा मैदान ॥

४

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहीं, आरतहर तोसों ॥२॥
ब्रह्म तू, हौं जीव हौं, तू ठाकुर, हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सबबिध हित मेरो ३।
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावे ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन–सरनपावे ।४॥

५

गुरुबिन कौन बतावे बाट, बड़ा बिकट यमघाट।
भ्रांति की पहाड़ी नदिया बिचमों अहंकार की लाट ॥ १ ॥
मदमत्सर का मेह बरसत माया पवन बहे दाट।
कहत कबीर सुनों भई साधो कैसे तरना यह घाट ॥ ३ ॥

६

दरशन देना प्रान पियारे ।
नंदलाला मेरे नैनों के तारे ॥ ध्रु० ॥

दीनानाथ दया सकलगुण,
नंदकिशोर सुंदर मुखवारे ॥ १ ॥
मनमोहन मन रुकम न रोक्यो,
दरसन की चित चाह हमारे ॥ २ ॥
रसिक खुशाल मिलन की आशा ॥
निशिदिन सुमरन ध्यान लगारे ॥ ३ ॥

७

नहीं ऐसो जन्म बारंबार ।
क्या जानूं कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतारा ध्रु०
घटत पल पल घटत छिन छिन, चलत न लागे बार । विरछ के ज्यों पात टूटे लगे नहीं पुनि डार ॥ १ ॥
भवसागर अति जोर कहिये विषम औखी धार ।
सुरत का नर बांधे बेडा बेग उतारो पार ॥२॥
साधु संतां ते महंतां चलत करत पुकार ।
दास मीरां लाल गिरिधर जीवना दिन चार ।३

विविध समाचार

नज़ाम हैदराबाद ने मक्के की मरम्मत के लिऐ ६ लाख रुपया दिया है ।

रूस में तीन सैनिक स्त्रियाँ हैं । इन्होंने परीक्षा पास कर ली है और अब वे बोलसेविक लाल सेना के कमांडिङ्ग अफसर के पद पर पहुंच गई हैं। ये तीनों ही १९१८ से १९२१ तक की क्रान्ति और उपद्रव में वीरता पूर्वक लड़ी हुई हैं ।

बम्बई शहर के विभिन्न स्थानों में स्त्रियां आनरेरी मजिस्ट्रेट का काम करती हैं ।

मुरादाबाद जिले के सीसपुर नामक ग्राम में ११५ वर्ष की एक बुढिया है जो अब भी १०५ सेर वजन की चीज लेकर चलती फिरती है ।

चीन के शंघाई नामक शहर में एक नया बैंक खुला है । इस की सारी पूंजी औरतों की है और औरतें ही इस में काम भी करती हैं ।

वायना के एक डाक्टर ने दो अन्धी औरतों की आंखों में मछली, मुर्ग और खरहे की पुतली जड़कर उनका अन्धापन दूर कर कर दिया है ।

लाहौर में, हाल में, एक ऐसा अजगर मरा था जिसकी लाश ५० आदमियों ने उठाई थी ।

एक ऐसा यन्त्र भी ईजाद हो गया जिसे किसी वृक्ष में बांध देने से उस वृक्ष सम्बन्धी गुप्त से गुप्त बात का पता लग जाता है ।

विलायत में एक ऐसे वृक्षका पता चला है जिसका फल कटहलसे भी बड़ा होता है । दूरसे यह फल भेड़ मालूम होता है ।

विलायत में एक अर्क तयार हुआ है जिसके लगा देने से लकड़ी में आग नहीं लगती ।

एक ऐसा भी ग्रामोफोन बना है जो बड़ी आसानी से जेब में रखा जा सकता है ।

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और वापस घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व पुस्तक सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण	१
२.	भक्तों के चरित्र	४
३.	आत्म त्याग (ले० श्री० पं० ज्ञानचन्द्र जी शास्त्री)	७
४.	मूल रामायण	१०
५.	जीव का स्वरूप (ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी)	२६
६.	बुद्धि और लक्ष्मी का सम्वाद	२८
७.	सेवा-धर्म (ले० श्री० पं० किशोरी दास जी राजपेयी)	३१
८.	गो-भक्ति (ले० श्री० पं० गंगाप्रसाद जी अग्निहोत्री जबलपुर)	३५
९.	महात्माओं के वाक्य	३७
१०.	भूसुरों का कर्म-क्षेत्र में स्वागत (म० शोभाराम जी धुनु सेवक)	३८
११.	भजन	३९
१२.	विविध समाचार	४०

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाकाशिका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ कठिनाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य ⁻)॥।

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।⁻)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य ⁻)॥

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय है फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथकड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥⁻) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उच्च कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।⁻)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।